कृषि रसायन दिग्दर्शिका

अंक-1, सितंबर 2022

ई-पत्रिका

कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान
रसायन एवं पेट्रो -रसायन विभाग के अंतर्गत स्वायत संस्थान
रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय,भारत सरकार
सेक्टर-20, उद्योग विहार,
गुरुग्राम -122 016, हरियाणा

कृषि रसायन दिग्दर्शिका
ई-पत्रिका

संपादक-

डॉ. जितेन्द्र कुमार

सह संपादक-

डॉ. ललितेश कुमार ठाकुर

डॉ. अमरीश अग्रवाल

श्री राज सिंह यादव

सहायक सम्पादक-

श्री सुदीप मिश्रा

संकलन सहायता-

श्री अनुज कौशल

प्रकाशकः-

कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान

रसायन और पेट्रो रसायन विभाग के अंतर्गत स्वायत्त संस्थान

रसायन और उर्वरक मंत्रालय, भारत सरकार

सेक्टर- 20, उद्योग विहार, गुरुग्राम -122016 (हरियाणा)

ई- मेलः director@ipft.gov.in, ipft@rediffmail.com

वेबसाइटः www.ipft.gov.in

© 2022, कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशक का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है अर्थात इसके लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्राक्कथन

कृषि में पुरानी पीढ़ी के कृषि रसायनों का प्रयोग किए जाने से स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे कीट नियंत्रण कम हो पाता है, साथ ही उत्पादन पर भी इसके दुष्प्रभाव होते हैं।कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान (आईपीएफटी) रसायन और पेट्रोरसायन विभाग, रसायन और उर्वरक मंत्रालय, भारत सरकार के तहत एक स्वायत्त संस्थान है। यह संस्थान पर्यावरण के अनुकूल, सुरक्षित, कुशल, लागत प्रभावी, कीटनाशक सूत्रीकरण, कीटनाशक गुणवत्ता नियंत्रण,प्रभावकारिता फाइटोटाक्सीसिटी और फसलों के संरक्षण एजेंटों के अवशेष डाटा उत्पादन पर कार्य कर रहा है। परंपरागत रसायनों के नुकसान को कम करने के लिए प्रयोक्ताओं एवं पर्यावरण की सुरक्षा हेतु आईपीएफटी नई पीढ़ी के कीटनाशक फॉर्मूलेशन और जैव वानस्पतिक सूत्रीकरण विकसित करने में सक्रिय रूप से संलग्न है। आईपीएफटी ने अभी तक 80 से भी अधिक प्रौद्योगिकियों को विकसित किया है। अधिकांश प्रौद्योगिकियों को विभिन्न कीटनाशक उद्योगों के उनके व्यवसायिक उपयोग हेतु हस्तांतरित किया है। नई पीढ़ी के फॉर्मूलेशन पर्याप्त मात्रा में जैव- प्रभावकारिता उत्पन्न करते हैं और पारंपरिक तथा सॉल्वेंट आधारित फॉर्मूलेशनों के प्रयोगों द्वारा खर्चे को कम करते हैं। इन फॉर्मुलेशनों में सॉल्वेंट या तो होता ही नहीं या बहुत कम होता है। इन फॉर्मूलेशन द्वारा त्वचा विषाक्तता, ज्वलनशीलता, पादपविषाक्तता और भोजन उत्पादों में कीटनाशक अवशेष के खतरों को न्यूनतम किया जाता है। ऐसे अनेकानेक उद्देश्यों व परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आईपीएफटी अनुसंधान एवं विकास कार्यों में संलग्न है। यह देश में कीटनाशक सूत्रीकरण का एक अग्रणी संस्थान है और परिष्कृत विश्लेषणात्मक उपकरणों सहित अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं से पूर्णरूपेण सुसज्जित है।

यह संस्थान विभिन्न फसलों और पर्यावरण पर फसल सुरक्षा एजेंटों के अवशिष्ट के विश्लेषण के लिए उद्योगों को सहायता प्रदान करता है। विश्लेषणात्मक लैब कीटनाशकों तथा विभिन्न भोज्य पदार्थों में कीटनाशक अवशेषों इत्यादि के परीक्षण के लिए एनएबीएल द्वारा मान्यता प्राप्त है। संस्थान के पास जैव- प्रभावकारिता, पादप विषाक्तता और कीटनाशक अवशेषों पर कृषि परीक्षणों और प्रयोगों हेतु विस्तृत कृषि क्षेत्र उपलब्ध है। विभिन्न राज्यों और राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ अवशेष परियोजनाओं पर अनुसंधान कार्यों में भी संलग्न है।

एक ऐसी पत्रिका प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है जिसमें सभी हित धारकों, वैज्ञानिकों, किसानों, विद्यार्थियों इत्यादि में कृषि रसायनों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और परस्पर परिचर्चा का एक प्लेटफार्म उपलब्ध करवाने की दिशा में एक पहल है। मैं आशा करता हूँ कि इसका

सभी वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, किसानों एवं अन्य सभी को फायदा होगा। इस पत्रिका के संबंध में आप सभी के सुझाव और विचार सादर आमंत्रित हैं।

डॉ. जितेन्द्र कुमार
निदेशक ,आईपीएफटी

विषय सूची

1. कीटनाशकों के फॉरेंसिक पहलू 1
2. पश्चिम बंगाल, भारत में किसानों के बीच कीटनाशकों के उपयोग पर एक रिपोर्ट 3
3. पशुधन में किलनी नियंत्रण के लिए हर्बल कीटनाशक औषधियों के प्रयोग का संक्षिप्त पुनर्विलोकन 11
4. औषधीय व सुगंधित पौधों की जैविक विधि से खेती 16
5. जैविक आलू उत्पादन 21
6. फसल अवशेषः एक समस्या या टिकाऊ कृषि के लिए एक अवसर 28
7. पोषक तत्व उपयोग दक्षता और फसल उत्पादन बढ़ाने हेतु पर्णीय छिड़काव 31
8. सब्जी उत्पादनः जीविका आवर्धन 38
9. प्राकृतिक खेती से किसानों की आय बढ़ेगी 45
10. आत्मनिर्भर भारत के लिए टिशु कल्चर केले की खेती 52
11. ड्रोन अन्नदाता की आय बढ़ाने में उपयोगी 64
12. ऑर्गेनिक खेती व खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से झूम खेती की आवश्यकता 71
13. जैविक खेती 76

कीटनाशकों के फोरेंसिक पहलू

डॉ. ए.के. जायसवाल

फॉरेंसिक मेडिसिन एंड टॉक्सिकोलॉजी विभाग, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली-110029, ईमेल:ashokjaiswal72@gmail.com

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, दुनिया भर में हर साल कीटनाशकों के कारण जहर के द्वारा आत्महत्या के लगभग दो मिलियन(बीस लाख) मामले और दस लाख गंभीर आकस्मिक दुर्घटना के मामले सामने आते हैं, जिनमें से करीब 2,00,000(दो लाख) लोगों की मृत्यु हो जाती है और अधिकांश मौतें विकासशील देशों में होती हैं।

कीटनाशक ऐसे पदार्थ हैं जिनका व्यापक रूप से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में कीटों को रोकने, नष्ट करने, पीछे हटाने या कम करने के लिए उपयोग किया जाता है। इन पदार्थों के समूह में यौगिकों के विभिन्न वर्ग शामिल हैं जो विभिन्न प्रकार की विषाक्तता प्रदर्शित करते हैं। जहां कीटनाशकों का उपयोग करने के फायदे हैं, वहीं मनुष्यों और अन्य जानवरों के लिए संभावित विषाक्तता जैसी कमियां भी हैं। स्थायी कार्बनिक प्रदूषकों पर स्टॉकहोम कन्वेंशन के अनुसार, 12 सबसे खतरनाक और लगातार जैविक रसायनों में से 10 कीटनाशक हैं। ऑर्गनोफॉस्फोरस यौगिक (ओपीसी), ऑर्गनोफॉस्फेट और ऑर्गेनोकार्बामेट्स, भारत में उपयोग किए जाने वाले सबसे आम कीटनाशक हैं और उनकी आसान उपलब्धता के कारण, इन यौगिकों का व्यापक रूप से आत्महत्या और आत्महत्या के इरादे से दुरुपयोग होता है। वर्तमान परिदृश्य में, एल्यूमीनियम फास्फाइड ने वास्तव में कुछ राज्यों में अन्य कीटनाशकों को शीर्ष स्थान से बाहर कर दिया है। उनकी संभावित विषाक्तता के कारण, इन पदार्थों को आमतौर पर हत्या के प्रयास, हत्या, आत्महत्या और जानवरों के खिलाफ अपराध के लिए जहर के रूप में उपयोग किया जाता है। फोरेंसिक प्रयोगशालाओं में, सामग्री में संभावित जहरीले पदार्थों की उपस्थिति का निर्धारण करने के लिए आमतौर पर जैविक नमूनों का विश्लेषण किया जाता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में, कीटनाशक विषाक्तता एक खतरा है और फोरेंसिक प्रयोगशालाओं में हत्या, आकस्मिक दुर्घटना या आत्महत्या के कारण रिपोर्ट किए गए अधिकांश मामलों के पीछे यही कारण है। चूंकि वे बाजारों में आसानी और सरलता से उपलब्ध हैं, इसलिए उनके दुरुपयोग की दर बढ़ रही है। अधिकांश मच्छर और कीट निरोधकों में कीटनाशक भी मौजूद होते हैं।

भारत में वर्तमान में उपलब्ध कीटनाशकों की व्यापक विविधता और भारी संख्या के कारण कीटनाशक का पता लगाना और उसकी पहचान करना आसान नहीं है।

फोरेंसिक टॉक्सिकोलॉजिस्ट नमूनों में कीटनाशकों का पता लगाने, उनकी पहचान करने और उनकी मात्रा निर्धारित करने की चुनौती का सामना करते हैं। विषाक्तता के मामलों में जैविक सामग्री से पृथक जहर आमतौर पर माइक्रोग्राम मात्रा में होता है। मौत के कारणों का पता लगाने के लिए मृतक के आंत के नमूने फॉरेंसिक टॉक्सिकोलॉजी डिवीजन को भेजे जाते हैं। इन पदार्थों की पहचान के लिए पतली परत क्रोमैटोग्राफी (टीएलसी), उच्च प्रदर्शन पतली परत क्रोमैटोग्राफी (एचपीटीएलसी), गैस क्रोमैटोग्राफी-मास स्पेक्ट्रोमेट्री (जीसी-एमएस) और तरल क्रोमैटोग्राफी-मास स्पेक्ट्रोमेट्री (एलसी-एमएस) आदि तकनीकों का उपयोग किया जाता है। . ये विधियां अत्यधिक संवेदनशील हैं और इस प्रकार कीटनाशकों का स्पष्ट पता लगाने के लिए इनका उपयोग किया जा सकता है।

संदर्भः /**REFERENCES**

1.https://www.epa.gov/ingredients-used-pesticide-products/types-pesticide-ingredients

2. https://www.vedantu.com/chemistry/pesticides

3. researchgate.net/publication/304051761_Identification_of_Pesticides_Drugs_of_foresnsic_Interests

4. Forensic Aspects of Pesticides. Journal-Forensic Science Society. 1965 Apr 1;5(2):73-5.

पश्चिम बंगाल, भारत में किसानों के बीच कीटनाशकों के उपयोग पर एक रिपोर्ट

सुभाजीत रुइदास, अर्का गंगोपाध्याय और दीपक कुमार हाजरा

कृषि रसायन विभाग, बिधान चंद्र कृषि विश्वविद्यालय, कल्याणी, नादिया - 741235, पश्चिम बंगाल, भारत

***अनुरूपी लेखक –** नाम : दीपक कुमार हाजरा ,ईमेल: dipakipft@gmail.com

परिचय

पूर्वी भारत के एक राज्य पश्चिम बंगाल में कृषि अत्यंत महत्वपूर्ण व्यवसाय है। 2014-2015 में पश्चिम बंगाल के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि का योगदान 18.8% था। कृषि-जलवायु परिस्थितियाँ भी चाय और कई प्रकार के फलों और सब्जियों के विकास के लिए प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करती हैं। 2015-16 में, पश्चिम बंगाल की फसल गहनता 188.5 प्रतिशत थी (अर्थशास्त्र और सांख्यिकी निदेशालय, डीएसी और एफडब्ल्यू)। पश्चिम बंगाल में उत्पादित शीर्ष पांच फसलें चावल, गेहूं, जूट, आलू और गन्ना हैं। पश्चिम बंगाल में आहार परंपरा अनुसार चावल का उत्पादन और मछली पकड़ना यहां की प्रमुख कृषि गतिविधि है। बंगाल भारत का प्रमुख चावल और जूट उत्पादक है। पश्चिम बंगाल में मुख्य रूप से एक गर्म और आर्द्र उष्णकटिबंधीय मानसून वातावरण होता है, जो गंभीर कीट हमले को प्रोत्साहित करता है और इसके परिणामस्वरूप, बड़े पैमाने पर फसल का नुकसान होता है। पिछले 50 वर्षों में कृषि पैदावार में जबरदस्त वृद्धि में कीटनाशकों का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। जबकि कीटनाशक कृषि उत्पादकता में सहायता करते हैं, उनके व्यापक उपयोग के पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए नकारात्मक परिणाम होते हैं, जिससे यह एक प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या बन जाती है।

पश्चिम बंगाल के कृषि-जलवायु क्षेत्र

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के अनुसार, हमारे देश को 13 प्रमुख और 127 सूक्ष्म-स्तरीय कृषि-जलवायु क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है। इन संभागों में से, पश्चिम बंगाल राज्य में तीन क्षेत्र हैं। पहाड़ी क्षेत्र, तराई क्षेत्र, पुराना जलोढ़ क्षेत्र, गंगा का बाढ़ का मैदान, लैटेरिटिक क्षेत्र और तटीय क्षेत्र छह कृषि-जलवायु क्षेत्र हैं जो इस राज्य को बनाते हैं (तालिका 1)।

तालिका 1: पश्चिम बंगाल के कृषि-जलवायु क्षेत्र

मुख्य फसलें

1. **पहाड़ी क्षेत्र** –दार्जिलिंग (सिलीगुड़ी उपखंड को छोड़कर) और जलपाईगुड़ी जिले का उत्तरी भाग।

फसलें – मक्का, चावल, विभिन्न प्रकार की सब्जियां, आलू, सोयाबीन, इलायची, अदरक, भिन्न औषधीय पौधे, चाय, संतरा आदि।

2. **तराई क्षेत्र** –दार्जिलिंग (केवल सिलीगुड़ी उपखंड), जलपाईगुड़ी जिला, अलीपुरद्वार, कोच बिहार, उत्तर दिनाजपुर (केवल इस्लामुर) उपखंड) जिला।

फसलें – चावल, जूट, चाय, अनानास, आलू, दालें, तिलहन आदि।

3. **पुराना जलोढ़ क्षेत्र**–दक्षिण दिनाजपुर और मुर्शिदाबाद का हिस्सा, बांकुरा, होरा, हुगली, बर्द्धमान (अविभाजित), बीरभूम, पश्चिम मेदिनीपुर और पुरबा मेदिनीपुर जिले

फसलें – चावल, गेहूं, मक्का, जूट, सरसों, नाइजर, मूंगफली, तिल, अलसी, मसूर, काले चने, हरे चने, अरहर, सब्जियां आदि।

4. **गंगा के बाढ़ का मैदान** –नदिया, मुर्शिदाबाद, मालदाह, उत्तर दिनाजपुर, बर्द्धमान (अविभाजित), हुगली, उत्तर 24 परगना और हावड़ा जिले।

फसलें – चावल, गेहूं, मक्का, जूट, हरा चना, काला चना, अरहर, मसूर, रेपसीड, सरसों, मूंगफली, तिल, अलसी, नाइजर, सब्जियां आदि.

खाद्य उत्पादन

पश्चिम बंगाल खाद्य और कृषि-प्रसंस्करण उद्योगों में भारत के तीन प्रमुख राज्यों में से एक है। पश्चिम बंगाल में फल, सब्जियां और अनाज की बहुतायत है। राज्य में 30 प्रतिशत आलू, 27 प्रतिशत अनानास, 12 प्रतिशत केला और 16 प्रतिशत भारत का अनाज उगाया जाता है। आम, पपीता, अमरूद और कटहल के साथ-साथ टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, बैंगन और कद्दू जैसी सब्जियां प्रचुर मात्रा में होती हैं। कृषि के मामले में, पश्चिम बंगाल चावल, अनानास, सब्जियों और फलों का देश का शीर्ष उत्पादक होने के साथ-साथ आलू और लीची का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। राज्य ने 2015-16 में कुल 17,776 हजार टन खाद्यान्न का उत्पादन किया। उत्पादित फलों की कुल मात्रा 3,517 हजार टन है। 22,825.45 हजार टन के कुल उत्पादन के साथ, राज्य सब्जियों का भारत का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। पश्चिम बंगाल बैंगन और गोभी के उत्पादन में पहले और आलू उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। यह मछली और मांस का देश का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक, चाय का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक और जूट का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है।

पश्चिम बंगाल में कीटनाशकों का उपयोग

एक फसल वर्ष में, दक्षिणी बंगाल में चावल के खेतों में औसत कीटनाशक इनपुट लगभग 1000 ग्राम / हेक्टेयर है, जो लगभग 0 (पुरुलिया) से 2400 ग्राम / हेक्टेयर (पश्चिम मिदनापुर) तक है, जबकि भारतीय औसत 500 ग्राम / हेक्टेयर से थोड़ा अधिक है (तालिका 2)। 43 प्रतिशत मामलों में, किसानों ने स्थानीय डीलरों से प्रभावित होकर 1.5 से 20 गुना के बीच कीटनाशक का ओवरडोज़ लगाया।

तालिका 2: भारत और पश्चिम बंगाल में रासायनिक कीटनाशक और जैव-कीटनाशक मांग और खपत पैटर्न (एमटी)

क्षेत्र –कीटनाशकों के प्रकार	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	2020-21
भारत-रासायनिक कीटनाशकों की मांग	63740	66472	73244	69211	70668

रासायनिक कीटनाशकों का सेवन	58634	63406	59670	61702	62193
जैव कीटनाशकों की मांग	10447	10409	9725	10852	11054
जैव कीटनाशकों की खपत	7190	7174	7203	8847	8645
पश्चिम बंगाल					
रासायनिक कीटनाशकों की मांग	4080	4125	4125	4400	4400
रासायनिक कीटनाशकों का सेवन	2624	2982	3190	3630	3630
जैव कीटनाशकों की मांग	1265	1265	1265	1210	1210
जैव कीटनाशकों की खपत	838	951	997	1017	1017

स्रोत: केंद्रीय कीटनाशक बोर्ड और पंजीकरण समिति (सीआईबी और आरसी)

प्रतिबंधित कीटनाशकों का कुल कीटनाशक इनपुट का 20.46 प्रतिशत हिस्सा है, जिसमें एंडोसल्फान प्रमुख रूप से शामिल है, खासकर 24 परगना और नादिया जिलों में। हालांकि, कुछ फसलों के लिए अनुमोदित कीटनाशकों की सूची पहले से ही उपलब्ध है (तालिका 3)।

तालिका 3: प्रमुख फसलों के लिए अनुशंसित कीटनाशक

फसलें **कीटनाशक**

चावल - एसेफेट, एसिटामिप्रिड, बेनफुराकार्ब, बिफेंथ्रिन, बुप्रोफेज़िन, कार्बोफुरन, कार्बोसल्फान, कार्टैप हाइड्रोक्लोराइड, क्लोरेंट्रानिलिप्रोल, क्लोरपाइरीफोस, क्लोथियानिडिन, डेल्टामेथ्रिन, डाइनोटफ्यूरन,

एथोफेनोप्रोक्स, फिप्रोनिल, फ्लोनिकेमिड, फ्लुबेन्डियामाइड, थिमिडाक्लोप्रिड, थिमिडाक्लोप्रिड। , थिफ़्लुज़ामाइड, टेबुकोनाज़ोल, पाइराक्लोस्ट्रोबिन, प्रोक्लोराज़, पेन्सीक्यूरोन, क्रेसोक्सिम-मेथी, हेक्साकोनाज़ोल, फ़्लुसिलाज़ोल, डिफ़ेनोकोनाज़ोल, कारप्रोपामाइड, कार्बेन्डाजिम, एज़िमसल्फ़्यूरॉन, ब्यूटाक्लोर, सिनमेथिलिन, साइहालोफ़ॉप ब्यूटाइल, एथोक्सिसल्फ़्यूरॉन, प्रेट्ज़ोफ़्यूरोन मिथाइल, एथोक्सिसल्फ़्यूरॉन, प्रेट्ज़ोल्फ़्यूरोन मिथाइल, एथोक्सीसल्फ़्यूरॉन, मेटसल्फ़ुरॉन मिथाइल।

गेहूँ-कार्बोफुरन, साइपरमेथ्रिन, डेल्टामेथ्रिन, फिप्रोनिल, इमिडाक्लोप्रिड, क्विनालफोस, थियामेथोक्सम, क्लोरेंट्रानिलिप्रोल, क्लोरपाइरीफॉस, कार्बेन्डाजिम, कार्बोक्सिन, डिफेनोकोनाजोल, प्रोपिकोनाजोल, टेबुकोनाजोल, ट्राएडिमेफॉन, एज़ोक्सिस्ट्रोबिन + डिफेनोकोनाज़ोल, इथाइलॉक्सिस्ट्रोबिन + डिफेनोकोनाज़ोल, एज़ोक्सिस्ट्रोबिन + डिफ़ेनोकोनाज़ोल प्रोपरगिल, 2,4-डी डाइमिथाइल अमीन नमक, 2,4-डी एथिल एस्टर, फेनोक्साप्रोप-पी-एथिल, फ्लुमियोक्साज़िन, आइसोप्रोटूरॉन, मेथाबेन्ज़थियाज़ुरोन, पेंडिमेथालिन, पैराक्वाट डाइक्लोराइड, सल्फ़ोसल्फ़्यूरॉन, ट्रायसल्फ़्यूरॉन, फेनोक्साप्रोप-पी-एथिल + मेट्रिबुज़िन, सल्फ़ुरॉन मिथाइल।

आलू-कार्बोफ्यूरन, थियामेथोक्सम, ऑक्सीडेमेटोन-मिथाइल, इमिडाक्लोप्रिड, डाइमेथोएट, एज़ोक्सिस्ट्रोबिन, कैप्टन, क्लोरोथालोनिल, कॉपर सल्फेट, डाइमेथोमोर्फ, हेक्साकोनाज़ोल, किताज़िन, क्रेसोक्सिम-मिथाइल, मैनकोज़ेब, ऑक्सैपिप्रोलिन, प्रोपीनेब, 2,4-डी डाइमिथाइल अमाइन नमक प्रोपेनिल, पैराक्वेट डाइक्लोराइड।

चाय-एबेंथ्रिन, कार्बोफुरन, क्लोथियानिडिन, साइफ्लुमेटोफेन, डेल्टामेथ्रिन, एमेमेक्टिन बेंजोएट, एटोक्साज़ोल, फेनज़ाक्विन, फेनपायरोक्सिमेट, फ्लुबेन्डियामाइड, हेक्सिथियाज़ॉक्स, फ़ोसलोन, प्रोपरगाइट, क्विनलफ़ोस, स्पिरोमेसिफ़ेन, थियामेथोक्सम, हेक्साकोनाज़ोल, हेक्साकोनाज़ोल, हेक्साकोनाज़ोल + प्रोपिकोनाज़िन ग्लूफोसिनेट अमोनियम, ग्लाइफोसेट, ऑक्सीफ्लोरफेन, पैराक्वेट डाइक्लोराइड, ट्राईसल्फ्यूरॉन, कारफेंट्राज़ोन एथिल + ग्लाइफोसेट, ऑक्सीफ्लुरोफेन + ग्लाइफोसेट, सोडियम एसेफ्लोरोफेन + क्लोडिनाफॉप प्रोपरगी।

सब्ज़ियाँ-मिर्च: एसेफेट, एसिटामिप्रिड, कार्बोफुरन, कार्बोसल्फान,क्लोरेंट्रानिलिप्रोल, डेल्टामेथ्रिन, डाइमेथोएट, एमेमेक्टिन बेंजोएट,फेनाजाक्विन, फेनप्रोपेथ्रिन, फेनपायरोक्सिमेट, फिप्रोनिल,

फ्लुबेंडियामाइड,हेक्सिथियाज़ॉक्स, इमिडाक्लोप्रिड, क्लोरोथालोनिल, साइफ्लुफेनामिड, डिफेनोकोनाज़ोल, Flusilazole, Hexaconazole, Meptyl Dinocap, Pyraclostrobin, Pendimethalin;

बैंगन: क्लोरेंट्रानिलिप्रोल, हेक्सिथियाज़ॉक्स, क्लोरपाइरीफोस, साइपरमेथ्रिन,डायफेंथियूरोन, डिमेथोएट, एमेमेक्टिन बेंजोएट, एटॉक्साजोल, फेनाजाक्विन,कार्बेन्डाजिम, कैप्टन

पत्ता गोभी: क्लोरफेनेपायर, क्लोरफ्लुअजुरोन, क्लोरपाइरीफोस, सायंट्रानिलिप्रोल,

साइपरमेथ्रिन, डायफेनथियूरोन, डिमेथोएट, फिप्रोनिल, फ्लुबेंडियामाइड,इंडोक्साकार्ब, मैलाथियान, स्पिनोसैड, कैप्टन, टेबुकोनाजोल

फूलगोभी: डाइमेथोएट, फेनवेलरेट, लुफेनुरॉन, मैलाथियान, क्विनालफोस,स्पिनोसैड, कैप्टन, क्लोरोथालोनिल, मैनकोजेब,

टमाटर: इंडोक्सकार्ब, लैम्ब्डा-साइहलोथ्रिन, मैलाथियान, नोवालुरॉन,क्विनालफोस, स्पिरोमेसिफेन, थियामेथोक्सम, फ्लुबेंडियामाइड, फ्लुबेंडियामाइड +क्रेसोक्सिम मिथाइल, नोवालुरोन + इंडोक्साकार्ब, कासुगामाइसिन, इप्रोडियोन,मैनकोज़ेब, सायज़ोफैमिड, कॉपर-सल्फेट, कॉपर-ऑक्सीक्लोरपिड, कैप्टन

जूट – कार्बोफुरन, फोसालोन, क्विनालफोस, कार्बेन्डाजिम

स्रोत:--केंद्रीय कीटनाशक बोर्ड और पंजीकरण समिति (सीआईबीऔर आरसी)

गैर-लक्षित प्राणियों पर कीटनाशक का प्रभाव

कीटनाशक कीड़ों और खरपतवारों को नष्ट करने के अलावा पक्षी, मछली और फायदेमंद विभिन्न प्रकार के जीवों के लिए खतरनाक हो सकते हैं। पश्चिम बंगाल विविध श्रेणी कृषि फसलों का विकास करता है। नतीजतन, कीटनाशकों का उपयोग भी अपेक्षाकृत अधिक है। नतीजतन, लक्षितऔर गैर-लक्षित दोनों प्रजातियां बहुत प्रभावित होती हैं। पश्चिम बंगाल में वर्षा ऋतु के दौरान फसल के खेतों में उनतालिस प्रकार की देशी मछलियाँ देखी जा सकती हैं। ये

मछली आबादी कृषि क्षेत्रों में साइपरमेथ्रिन (10 प्रतिशत ईसी या 25 प्रतिशत ईसी) जैसे रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग के कारण तेजी से घट रहीं हैं। कीटनाशक प्रदूषण से गंगा नदी की डॉल्फ़िन स्तनपायी सबसे संवेदनशील प्रभावितों में से हैं क्योंकि यह नदी कीटनाशक प्रदूषण के प्राथमिक स्रोतों के बहुत करीब है।

निष्कर्ष –पश्चिम बंगाल में कीटनाशकों का उपयोग काफी अधिक है क्योंकि यह ज्यादातर कृषि प्रधान राज्य है। यहां विभिन्न किस्मों की फसलें, सब्जियां, फल और अनाज उगाए जाते हैं। नतीजतन,कीटनाशक संदूषण ने भूमि, जल और वायु को दूषित कर दिया है। अतः यह महत्वपूर्ण है कि कीटनाशकों के उपयोग के बारे में सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) द्वारा किसानों को शिक्षित किया जाए और उन्हें कीटनाशक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करें।

ग्रन्थसूची/Bibliography

Aktar, M., Paramasivam, M., Sengupta, D., Purkait, S., Ganguly, M., & Banerjee, S. (2009). Impact assessment of pesticide residues in fish of Ganga river around Kolkata in West Bengal. *Environmental monitoring and assessment*, *157*(1), 97-104.

Bishnu, A., Chakrabarti, K., Chakraborty, A., & Saha, T. (2009). Pesticide residue level in tea ecosystems of Hill and Dooars regions of West Bengal, India. *Environmental monitoring and assessment*, *149*(1), 457-464.

CIBRC (Central Insecticides Board and Registration Committee), 2022. Available at

Department of Agriculture’s, Go WB. (2012). Economic Review. Evaluation wing, Directorate of Agriculture, West Bengal, pp. 65.

Environ News Forum. Killer environment. Environ. Health Perspects. 1999;107:A-62

Guzzella, L., Roscioli, C., Vigano, L., Saha, M., Sarkar, S. K., & Bhattacharya, A. (2005). Evaluation of the concentration of HCH, DDT, HCB, PCB and PAH in the sediments along the lower stretch of Hugli estuary, West Bengal, northeast India. *Environment International*, *31*(4), 523-534.

http://ppqs.gov.in/statistical-database [accessed on 24.05.2022].

Khan, W., Jamshed, M., & Fatima, S. (2020). Contribution of agriculture in economic growth: A case study of West Bengal (India). *Journal of Public Affairs*, *20*(2), e2031.

Khatun Hasnahara, Jamal Arshad (2021), Uses of Chemical Pesticides in Agricultural Fields in West Bengal and their Effects on Non-Target Species - A Review Study. *International Journal Of Innovative Research In Technology,* 8 (6), 64-69

Kole R.K., Bagchi M.M. Pesticides residues in aquatic environment and their possible ecological hazard. J. Inland Fish Soc. India. 1995;27(2):79– 89.

Kole R.K., Banerjee H., Bhattacharyya A., Monitoring of pesticide residues in the farm gate vegetable samples in West Bengal. Pest Res J. 2002;14(1):77–82.

Lahiri, A., & Yi, K. M. (2009). A tale of two states: Maharashtra and West Bengal. Review of Economic Dynamics, 12(3), 523–542.

Mandal, S., Poi, R., Ansary, I., Hazra, D. K., Bhattacharyya, S., & Karmakar, R. (2020). Validation of a modified QuEChERS method to determine multiclass multipesticide residues in apple, banana and guava using GC–MS and LC–MS/MS and its application in real sample analysis. *SN Applied Sciences*, *2*(2), 1-14.

Mandal, S., Poi, R., Bhattacharyya, S., Ansary, I., Roy, S. D., Hazra, D. K., & Karmakar, R. (2020). Multiclass Multipesticide Residue Analysis in Fish Matrix by a Modified QuEChERS Method Using Gas Chromatography with Mass Spectrometric Determination. *Journal of AOAC International*, *103*(1), 62-67.

Mondal, R., Mukherjee, A., Biswas, S., & Kole, R. K. (2018). GC-MS/MS determination and ecological risk assessment of pesticides in aquatic system: a case study in Hooghly River basin in West Bengal, India. *Chemosphere*, *206*, 217-230.

Nandargi, S. S., & Barman, K. (2018). Evaluation of climate change impact on rainfall variation in West Bengal. *Acta scientific agriculture, 2*(7).

Singh, A. K., Sar, T. K., & Mandal, T. K. (2013). Monitoring of pesticide residue in bovine milk from Nadia district, West Bengal. *Bulletin of environmental contamination and toxicology*, *91*(1), 13-17.

Singh, S., Bhutia, D., Sarkar, S., Rai, B. K., Pal, J., Bhattacharjee, S., & Bahadur, M. (2015). Analyses of pesticide residues in water, sediment and fish tissue from river Deomoni flowing through the tea gardens of Terai Region of West Bengal, India. *International journal of fisheries and aquatic studies*, *3*(2), 17-23.

पशुधन में किलनी नियंत्रण के लिए हर्बल कीटनाशक औषधियों के प्रयोग का संक्षिप्त पुनर्विलोचन

शिवानी, अजेयता रियालच, पारुलशुक्ला एवम गोरखमल
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र पालमपुर,
पशु चिकित्सा एवम पशु विज्ञान महाविद्यालय, चौ.स.कु.हि.प्र.कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर
ईमेल: ajaytarialch@gmail.com

परिचय:

किलनीयां पशुओं के बाह्य परजीवी हैं और भोगौलिक विविधता की विस्तृत श्रृंखला में पायी जाती हैं।ये जानवरों और मनुष्यों में घातक बिमारियों के प्रमुखरोगवाहक हैं। किलनी केभारी संक्रमण से घरेलू पशुओं में वज़न कम होना, खून की कमीऔर दूध की उपज में कमी हो सकती है। घरेलू पशुओं में किलनी से फैलने वाली बिमारियों के कारण किसानों को आर्थिक नुकसानों का सामना करना पड़ता है। किलनी को नियंत्रित करने के लिए कृत्रिम कीटनाशकों का उपयोग प्रमुख है।लेकिन अब कृत्रिमकीटनाशकों के विरुद्धकिलनीयों में प्रतिरोधक क्षमता उभर रही है। कृत्रिम कीटनाशक प्रायः ज़हरीले रसायनों से बने होते हैं। अतः वे खाद्य श्रृंखला में विषाक्त पदार्थों के रूप में मनुष्यों में गंभीर स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्याएंउत्प्न्नकरते हैं।जानवरों और मनुष्यों में किलनी तथा किलनी जनित रोगों से सम्बंधित आर्थिक नुकसान के कारण तथा रासायनिक कृत्रिम कीटनाशकों के नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों के कारण पौधों से प्राप्त हर्बल विधियों का अनुसरण एकसंयुक्त विकल्प के रूप में किया जा रहा है। हर्बल कीटनाशकों के कुछ उदाहरण हैं प्याज़, नीम का तेल, नीलगिरि का तेल और लौंग आदि।यद्यपि हर्बल कीटनाशकों द्वारा रसायनिक कृत्रिम कीटनाशकों के इस्तेमाल को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता, लेकिन हर्बल कीटनाशकों के समन्वित प्रयोग से कृत्रिम कीटनाशकों का प्रयोग घटाकर उनके हानिकारक प्रभावों से बचा जा सकता है।

हर्बल कीटनाशक की आवश्यकता:

किलनीयों द्वारा फैलाई जाने वाली बीमारियां पशुधन में ही नहीं किसानों की लिए भी एक बाधा बन चुकी हैं। इसके लिए अधिकतर किसान किलनीनाशकअथवाकिलनीप्रतिकारक रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करते हैं जैसे किसाइपरमैथरीन, डेल्टामैथरीन, मेलाथिऑन आदि। किलनीयों में इन रसायनिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो गयी है, जिससे इन कीटनाशकों की किलनी नियंत्रण में प्रभावकारिता निरंतर घटती जा रहीहै। साथ ही कृत्रिम कीटनाशकों का पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभावपड़ता है। यह पानी में आसानी से घुल जाते हैं तथा पानी में लम्बे समय तक रहते हैं जो मनुष्य में भी बिमारियों का कारण बन सकता है। रासायनिक कीटनाशकोंके दुष्प्रभावों को देखते हुए हर्बल कीटनाशकों द्वारा किलनी नियंत्रण को बढ़ावा दिया गया है, जो किलनी नाशकयाप्रतिकारक होने केसाथ पर्यावरण संरक्षक भी हैं।

<u>एक आदर्श हर्बल कीटनाशक की विशेषताएं</u>:

१ एक आदर्श हर्बल कीटनाशक आसानी से उपलब्ध, सस्ता, जैव अवक्रमित तथा अल्पतम विषाक्त होना चाहिए।

२ हर्बल औषधियों के प्रयोगसेकिलनीयोंमें दवा प्रतिरोधक क्षमता काविकास कमहोता है।

३ यह मांस, दूध और पनीर जैसे संसाधित पदार्थों के (रसायनों द्वारा) दूषण की संभावना को कम करता है।

४ खाद्य सुरक्षा पहलुओं के कारण इनकी उच्च उपभोक्ता मांग होती है।

५ यह पर्यावरण के अनुकूल और मनुष्यों, जानवरों, पक्षियों और अन्य जीवित प्राणियों के लिए सुरक्षित होता है।

<u>किलनी नियंत्रण के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले कुछ हर्बल कीटनाशक</u>:

विश्व स्तर पर, ३००० से अधिक पौधों की प्रजातियां कीटनाशक या किलनी प्रतिकारक गुणों के साथ पायी जाती हैं। पौधों में विभिन्न प्रकार के घटक होते हैं जो प्राकृतिक, वाष्पशील जैविक यौगिकों का जटिल मिश्रण होते हैं।

कीटनाशक गुणों वाले पौधों की एक सूची तालिका में प्रस्तुत की गयी है जो किलनी नियंत्रण में उपयोगी सिद्ध हुए हैं:

क्रमांक	हर्बल औषधियों का स्त्रोत	हर्बल औषधियों के घटक	किलनी नियंत्रण में प्रयोग करने की विधि
१	नीम के पत्ते	सलानिन, निम्बिन	२ किलो ग्राम नीम के पत्तों को पानी में उबाल कर उसके अर्क को पशु के किलनी संक्रमित अंगों पर लगाएं
२	हल्दी	करक्यूमिन	१० ग्राम हल्दी को गुनगुने पानी में मिलाकर हल्दी के अर्क का छिड़काव करें
३	सीताफल	सैलिसिलिक एसिड, क्वेरसेटिन	सीताफल के तेल से पशु कीदिन में तीन बार मालिश करें
४	लौंग	यूगेनोल, कार्योपिलेने	लौंग को गुनगुने पानी में पीसकर किलनी संक्रमित स्थान पर लगाएं
५	दालचीनी	सिन्नामिकएसिड, यूगेनोल	दालचीनी का गाढ़ा मलहम बनाकर किलनी संक्रमित स्थान पर लगाएं
६	अदरक का तेल	जिंजरोल्स , शोगाओल्स	अदरक के तेल का छिड़काव करें
७	नीम्बू का अर्क	सिट्रिक अम्ल	३० मिली लीटर निम्बू के रस को १०० मिली लीटर पानी में मिलाकर उसके अर्क का छिड़काव करें
८	नीलगिरि का तेल	टैनिन	नीलगिरि के तेल से पशु की मालिश करें
९	अजवायन का अर्क	थिमोल	५० ग्राम अजवायनको १०० मिली लीटर पानी में उबालकर दिन में तीन बारकिलनी संक्रमित स्थान पर लगाएं
१०	देवदार की लकड़ी का तेल	सेडरॉल, सेड्रिन	देवदारके तेल से पशु की मालिश करें
११	तुलसी के पत्ते	यूगेनोल, कार्वाक्रॉल	५ से ६ तुलसीके पत्तों को पानी में उबालकर उसके अर्क को पशु के किलनी संक्रमित अंगों पर लगाएं
१२	पुदीने के पत्ते	मेंथोल	पुदीने केपत्तोंके अर्क का छिड़काव करें

१३	बांह और माला के पत्ते	विरिडीफ्लोरो	बांह और माला के २ किलो ग्राम पत्तों को ४ लीटर पानी में उबालकर रख लें तथा तीन दिन तक ३०० मिली लीटर तैयार किया गया अर्क लगाएं
१४	एलो-वेरा का अर्क	सैपोनिन्स, फ़यटोस्टेरॉल्स	एलो-वेरा की जेली का मलहमलगाएं
१५	लहसुन का अर्क	गल्लीक एसिड, क्वेरसेटिन	लहसुनकी ५-६ गांठों को पानी में उबालकर उसकेअर्कको पशु के किलनी संक्रमित अंगों पर लगाएं

<u>हर्बल कीटनाशकों के प्रयोग में चुनौतियाँ</u>:

१ हर्बल कीटनाशकों के विकास में प्रमुख चुनौतियाँ गुणवत्ता को नियंत्रित करना है जिसमे विषाक्ता, प्रभावकारिता और सुरक्षा शामिल हैं। शुद्धता व सरूपता का आंकलन करने के लिए विभिन्न मानदंडो जैसे कि भौतिक स्थिरांक, दूषित पदार्थों, मिलावट तथा नमी की मात्रा आदि की जांच करनी चाहिए।

२ कई हर्बल कीटनाशक शरीर में अन्य घटकों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं जिससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। हर्बल दवाएं एक या अधिक यौगिकों का मिश्रण होती हैं, इन यौगिकों के संयोजन से हर्बल पारम्परिक दवाओं के बीच पारस्परिक क्रिया की संभावना बढ़ जाती है।

३ हर्बल कीटनाशकों के प्रयोग को पशुधन में सुरक्षित प्रमाणित करना एक गहन चिंतन का मुद्दा है क्योंकि कई बार इनके प्रयोग से पशुओं में जिगर की विषाक्ता, गुर्दों का खराब होना आदि प्रतिकूल प्रभाव पाए गए हैं। अतः उत्पाद की स्थिरता और गुणवत्ता सुनिश्चित कीजानीचाहिए तथा दिशा-निर्देशों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

४ नैदानिक परीक्षण चुनौतियों में यौगिकों की प्रभावकारिता और गुणवत्ता का आंकलनकिया जाना चाहिए।

५ हर्बल कीटनाशक की खराब तथा अव्यवस्थित उपज भी इनके उपयोग में प्राथमिक बाधा है। पौधों के आवश्यक तेलों के बीच क्षेत्र से क्षेत्र, विभिन्न मौसम आदि के बीच बहुत से रासायनिक

परिवर्तन होते हैं। प्रत्येक घटक की पहचान करने के लिए निर्माताओं द्वारा तकनीकी ग्रेडिंग पैरामीटर तय किये जाने चाहिए।

<u>भविष्य का दृष्टिकोण और निष्कर्ष:</u>

१ हर्बल औषधियों की मदद से किलनीयों में कृत्रिम कीटनाशकों के प्रति बढ़ते प्रतिरोध के कारण होने वाले दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है।

२ प्रकृति में विभिन्न प्रकार के हर्बल कीटनाशक मौजूद हैं जिनमें बेहतरीन किलनी प्रतिकारक क्षमता है।

३ अतः हर्बल कीटनाशकों के उपयोग का प्राथमिक महत्व पर्यावरण सुरक्षा भी है।

४ हर्बल कीटनाशक प्राकृतिक होने के कारण मनुष्यों के लिए भी हानिकारक नहीं होते हैं।

५ वर्तमान में हर्बल तथाकृत्रिमकीटनाशकों का समन्वित प्रयोग किलनी संक्रमण से स्थायी रूप से लड़ने के लिए भविष्य का दृषिकोण है।

औषधीय व सुगंधित पौधों की जैविक विधि से खेती

वर्षा रानी, सूर्य प्रताप सिंह एवं डा0 आर0 एस0 सेंगर
कृशि बायोटेक्नोलॉजी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विष्वविद्यालय, मोदीपुरम, मेंरठ।
जेएस विश्वविद्यालय,शिकोहाबाद,उत्तर प्रदेश

सभ्यता की शुरुआत से ही मानव, अन्य जीवोंकी भॉति पौधों का प्रयोग भोजन व औषधि के रूप में करता चला आ रहा है। आज भी अधिकांश औषधियां जंगलों से उनके प्राकृतिक उत्पादन क्षेत्रसे ही लाई जा रही हैं, इसका मुख्य कारण तो उनका आसानी से उपलब्ध होना है, किंतु इससे बड़ा कारण जंगल के प्राकृतिक वातावरण में उगने के कारण इन पौधों की अच्छी गुणवत्तायुक्त होना है।वर्तमान में एलोपैथी की रासायनिक दवाओं केकई बुरे प्रभावों के कारण पौधों से उत्पादित आयुर्वेदिक हर्बल दवाओं का उपयोग तेजी से बढ़ा है। जिससे इनका जंगलों से दोहन और भी बढ़ रहा है तथा मांग को पूरा करने के लिए कई औषधीय एवं सुगंधीय पौधों की खेती भी की जा रही है। चूँकि औषधियां रोगों को ठीक करने के लिए तथा सुगंधीय फसलों में से सुगंधित पदार्थ निकालने में काम आते है। अतः उत्पादन अधिक करने की बजाय अच्छे गुणवत्ता के लिए उत्पादन करना जरूरी व बाजार की मांग केअनुरूप है।गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए जैविक या प्राकृतिक तरीके से उत्पादन ही एकमात्र तरीका है क्योंकिः—

- प्राकृतिक या जैविक तरीके से उत्पादन करने पर औषधीय पौधों में क्रियाशील तत्व व सुगंधित पौधों में तेल की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है जबकि रसायनिक उर्वरकों जैसे यूरिया, डीएपी आदि के प्रयोग से उनकी गुणवत्ता क्रमशः घटती जाती है।
- रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से औषधि नहीं विष बनता है अर्थात कीटनाशकों के अवशेष रोगी के रोग ठीक करने की बजाए रोग को अधिक बढ़ा सकते हैं।अतः सिर्फ प्राकृतिक तरीकों से रोग, कीट नियंत्रण ही औषधीय पौधों की खेती में ना केवल बाजार के लिए जरूरी है वरन यह एक सामाजिक उत्तरदायित्व भी है।
- इसके अतिरिक्म कई अन्य प्रकार की हानियां जो रासायनिक खेती से जुड़ी हैं वह सभी इन फसलों की खेती में भी होती हैं। जैसे लागत का बढ़ना, भूमि की उर्वरता का कम होना, कीटनाशकों में प्रतिरोधकता पैदा होना और गाँव—खेत में प्रदूषण का बढ़ना आदि। अतः उचित यही है कि औषधीय और सुगंधीय पौधों की जैविक खेती की जाए।

जैविक खेतीः जरूरी भी और मजबूरी भी

पर्यावरण व भूमि को बचाने के लिए और उपभोक्ता के स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती बेहद जरूरी है।कर्जे के बोझ को कम करने एवं कम होते भूजल से ही खेती करने के लिए जैविक खेती मजबूरी

है।भविष्य में पेट्रोलियम पदार्थों के निरंतर बढ़ते दाम व घटती उपलब्धता से उवर्रक एवं कीटनाशकों की उपलब्घता (पैट्रोलियम से ही बनते हैं) ही खतरे में पड़ जाएगी, तब जैविक खेती ही संभव होगी। अतः वर्तमान या भविष्य की जरूरत या मजबूरी को समझ कर जैविक खेती करना ही एकमात्र विकल्प है।

औषधीय और सुगंधीय पौधों की जैविक खेती–सुझाव

1. औषधीय और सुगंधित पौधों की खेती सदैव जंगल जैसा वातावरण बनाकर ही की जाए अर्थात खेत में कुछ वृक्ष, कुछ झाड़ियां, कुछ लताएं तथा कुछ शाकीय फसलें हो। जैसा कि तालिका में दर्शाया गया है। इसमेंमृदा–उर्वरता, सूर्य का प्रकाश,मृदा में नमी में जो संतुलन होगा उससे इनकी गुणवत्ता बढ़ेगी। दूसरे कई फसलों के होने से बाजार में मांग–पूर्ति में संतुलन हो सकेगा जिससे किसान को हानि होने की संभावना भी कम होगी।

2. वर्मी कंपोस्ट या केंचुआ खाद का प्रयोग 10–12 टन/हेक्टेयर/वर्ष अवश्य किया जाना चाहिए, जिसमें अधिकाँश मात्रा निराई–गुड़ाई के समय दी जानी चाहिए। इससे न केवल अच्छा उत्पादन प्राप्त होगा, इसके साथ ही गुणवत्ता भी बहुत अच्छी होगी, किंतु वर्मी कंपोस्ट स्वयं के खेत अथवा ग्राम स्तर पर बनाकर नमीयुक्त अवस्था में छायादार स्थान पर भंडारण कर 15–20 दिन में उपयोग कर लेना चाहिए। प्लास्टिक के बोरो में पैक सूखा या 15 दिन से ज्यादा पुराने वर्मी कंपोस्ट के गुण बहुत कम हो जाते हैं।

3. रोग एवं कीट नियंत्रण के लिए नीम + गोमूत्र का छिड़काव 15–20 दिन के अंतराल पर करते रहना चाहिए। भूमि के रोग एवं कीटों को नष्ट करने के लिए नीम की खल या पिसी हुई निंबोली 4–5 क्विंटल हेक्टेयर की दर से भूमि में 2 वर्ष में एक बार अवश्य मिलना चाहिए।

4. अग्निहोत्र, अमृतपानी, पंचगव्य आदि का प्रयोग मृदा में लाभकारी सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ाने व जलवायु जनित कीट रोग से बचाव करने के लिए किया जा सकता है।

5. कुछ औषधीय फसलों की खेती सामान्य फसल चक्र या अन्य के रूप में भी की जा सकती है। जैसे धान के साथ बच की खेती से धान के कई कीटो से छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार सब्जियों की खेती के अंतरसस्य के रूप में सुगंधित घासो/मसालों की खेती से कई रोग कीट कम लगते हैं।

6. औषधीय पौधों में गुणवत्ता सबसे महत्वपूर्ण है अतः सही समय पर कटाई–तोड़ाई तथा छाया में सुखाकर भंडारण/विक्रय करना चाहिए।

7. थोड़ा बीज यापौध को बाजार से लाकर उसका स्वयं के खेत में जैविक तरीके से उत्पादन करना चाहिए। इससे प्राप्त बीज को ही संपूर्ण खेत में लगाने के लिए उपयोग करना चाहिए।

8.बीज से बाजार तक की संपूर्ण जानकारी होने पर ही औषधीय पौधे की खेती बड़े पैमाने पर करनी चाहिए।

9. अन्न वाली फसलों की मांग सदैव रहेगी और औषधीय एवं सुगंधित फसलों की मांग व बाजार भाव से तेजी से ऊपर नीचे होते रहते हैं। अतः किसान भाई अन्न वाली फसलों को पूर्णता है न हटाएंवरन् औषधीय सुगंधीय फसलों को फसल चक्र अंतरशस्य के रूप में स्थान देवें। इससे बाजार के अनुसार सामंजस्य स्थापित करने में सरलता रहेगी।

तालिकाः कृषि वानिकी हेतु औषधीय वृक्ष, झाड़ी और लता (बेल)

वृक्ष	झाड़ी	बेल
अगर (एक्वेलेरिया)	अंकोल (ऐलेजियम लेमार्की)	इन्द्रायण (सिटुलस कोलोसिन्थ)
नीम (अजाडिरेक्टा इंडिका)	बाकुची / बवची (सोरेलियाकोरियाफोलिया)	शतावर (ऐस्पेरगस रेसीमोसम)
अम्ल बेल (गर्सीनिया वेडेन्कुलेटा)	बायेबिडंग (एम्बालिका रिब्स)	कलिहारी (ग्लौरिया सुपर्बा)
विजयसार (पेट्रोकार्पस मर्सुवियम)	सनाय (केसिया अंगुस्टीफोलिया)	अनन्नतमूल (हेमेडेस्मस इंडिका)
अर्जुन (टमेग्नेलिया अर्जुना)	रासना (प्लूचिया लेसियोलेट)	गुड़मार (ग्यानोनमा सिल्वेस्ट्रे)
अगस्त (सेस्वानियाग्राण्डीफ्लोरा)	चित्रक (प्लम्बेगी जाइलेनिका)	कौंच (मुकुना प्रूरिया)
रोहितक (टेकोमेला अण्डुलेटा)	सर्पगन्धा (राउल्फिया सपेन्टिना)	पिप्पली (पाइपर लौंगम)
आंवला (फाईलेन्थस अम्बालिका)	शंखपुष्पी (इवोल्वुलस एल्सीनोइड)	जीवन्ती (लेप्टाडीनिया)

जैविक खेतीः प्रकृति का एक निशुल्क उपहार

जैविक खेती के लिए उपयोग की जाने वाली खाद, खेती के अवशेष तथा पशु अपशिष्ट से बनती है जिसमें लागत के नाम पर सिर्फ मेहनत ही होती है। इनके उपयोग से भूमि उपजाऊ और साथ ही जल की बचत होती है। इसी प्रकार जैविक कीट नियंत्रण नीम व गोमूत्र के माध्यम से बनाए जाते हैं जिनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है।

जैविक उत्पाद, स्वादिष्ट, अच्छी गंध व रुप वाले तथा अधिक समय तक भंडारण करने के योग्य होते हैं, और इनका बाजार भाव भी अधिक मिलता है।

इस प्रकार जैविक खेती प्रकृति का एक निशुल्क उपहार है जिसके लिए केवल मेहनत और प्रकृति से तालमेल की आवश्यकता होती है।

एक बीघा जमीन सिर्फ 1 गाय और एक नीम

एक हेक्टेयर (100 मीटर ग 100 मीटर) भूमि में लगभग 6 बीघा होते है, अक्सर किसान भाई बीघानाप को ही आधार मानकर खेती की सभी गणनाएं (नाप–तौल)आदि क्रियाएं करते हैं। इसलिए एक

बीघा में जितनी खाद्य एवं जैविक कीट नियंत्रक की आवश्यकता होती है उसी के हिसाब से गणना की जाए तो समझनें में आसानी रहेगी।

एक गायः—वर्ष भर में एक गाय लगभग 3—3.5 टन गोबरदेती है यदि सिर्फ गोबर से ही खाद बने तो लगभग 2 टन खाद तो बनेगी ही जो कि एक बीघा जमीन में यदि तीन फसल या सब्जियों की फसल भी लगाई जाए तो भी पर्याप्त रहता है।इसी प्रकार एक गाय लगभग 1000 लीटर मूत्र पैदा करती है जिसमें से आधा तो खाद या सिंचाई के साथ दे देने के बाद भी 500 लीटर गोमूत्र व नीम की पत्ती से इतना कीट नियंत्रक बन सकता है कि एक बीघा जमीन में वर्ष भर में हर 15 दिन बाद लगभग 20 छिड़काव किए जा सकते हैं।

एक नीमः—नीम की पत्तियां तो गोमूत्र आधारित कीटनाशक व भूमि में हरी खाद के रूप में काम आ ही जाती हैंसाथ ही एक नीम से प्रतिवर्ष कम से कम 50—60 किलो निंबोली मिलती है जिसका लगभग 10—15 लीटर नीम तेल निकालने के बाद 40 किलो खल को जमीन में मिलाने से पोषक तत्व तो मिलते ही हैं साथ ही जमीन से पैदा होने वाली फसलों के कीड़े रोग भी कम हो जाते हैं।

अतः जैविक खेती को सरलबनाने के लिए प्रति बीघा जमीन के हिसाब से एक गाय का पालन और एक नीम लगाएं तो बाहर से शायद कुछ भी लाने की जरूरत नहीं पड़ेगी साथ ही मिलेगी नीम की छाया और गाय का शुद्ध दूध।

वृक्षों का सहारा जरूरी है जैविक खेती में—औषधीय पौधों की खेती के लिए जंगल जैसा वातावरण बनाने के लिए खेत में वृक्षों को उचित संख्या का उचित प्रणाली का होना बहुत आवश्यक हो जाता है। यह वृक्ष औषधीय उपयोग के भी हो सकते हैं। खेत में वृक्षों का प्रबंधन निम्न प्रकार से करना चाहिएः—

वृक्षों को फसलों के साथ लगाने का तरीका नया नहीं है और सस्यवानिकी या एग्रोफोरेस्ट्री के नाम से जाना जाता है इस में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. खेत को जंगल बनाने का अर्थ एक उचित संख्या में वृक्ष लगाने से है जो कि एक हेक्टेयर (1000 मी^{2}) में से 10 से 20 तक हो सकती है। अधिक वृक्ष लगाने पर वह फसलके साथ धूप पानी और पोषक तत्व हेतु प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं जिससे फसल की बढ़वार में उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

2. जैविक खेती के लिए औषधीय वृक्षों को लगाना ज्यादा उपयोगी रहता है। तालिका—1 में औषधीय वृक्ष, लताओं,झाड़ियों की सूची दी गई है यह सूची एक उदाहरण मात्र है और अलग—अलग क्षेत्रों के आधार पर इसमें पौधों को निकाला है शामिल किया जा सकता है।

3. कुछ थोड़े से प्रयास से किसान भाई स्वयं की पौधशाला में पौधे तैयार कर सकते हैं। खेत के पास पौधशाला में तैयार किए गए पौधे अधिक स्वस्थ, विकसित जड़ वाले ओर अच्छे से पनपते हैं।

4. वृक्ष प्रजाति ऐसी होनी चाहिए जिससे वर्षभर थोड़ी–थोड़ी पत्तियां झड़ती रहे जो भूमि पर गिर कर मल्च का कार्य करें (भूमि को ढ़ँककर रखे) और बाद में खाद के रूप में पोषण दे। कभी भी सफेदा (यूकेलिप्टिस) जैसा वृक्ष को खेत में न लगाएं क्योंकि इनकी पत्तियां न तो सड़ती हैं और साथ ही भूमि की अन्य क्रियाओं में अवरोध उत्पन्न करती है।

5. बड़े वृक्षों को खेत की बाड़ पर वायु अवरोधक के रूप में तथा छोटे वृक्षों या फलदार पौधों जैसे आंवला, बेल, किन्नू तथा बेर आदि को फसल की कतारों के बीच कम से कम 8 से 10 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिए ताकि फसलों से प्रतिस्पर्धा न हो। कुछ कांटेदार झाड़ियों जैसे काँटा–करंज (औषधीय पौधा) आदि को खेत की सुरक्षा के लिए बाढ़ के रूप में भी लगाया जा सकता है।

6. खेत की मेड पर या गौशाला या चौपाल में कम से कम 2 से 3 वृक्ष नींम, बकायन, करंज और सहजन आदि जरूर लगाएं जो की औषधीय पौधे होने के साथ–साथ रोग के नियंत्रण में भी सहयोगी होते हैं।

7. वृक्षों को नियमित रूप से काट छांट करते रहना चाहिए ताकि वह सीधे तने वाले बने रहे और खेती के कार्य में बाधक न बनते हो।

8. प्रातः काल की धूप सभी पौधों के लिए लाभकारी होती है अतःवृक्षों को सदैव ऐसी दिशा में लगाना चाहिए ताकि फसल को प्रातः काल सूर्य प्रकाश अवश्य मिलता रहे।

9. सुरक्षा के चारों और उनकी छाया के बराबर थाला बना देना चाहिए जिससे नियमित रूप से खाद पानी देते रहना चाहिए। इससेफसल और वृक्षों में किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्धा नहीं होगी और दोनों का विकास अच्छा होगा। थालों में घास फूस की मल्च बिछाने से जल की हानि कम होती है।

10.दीमक से बचावः–दीमक से बचाव के लिए, पौधे लगाने से पहले गड्ढा भरते समय सड़ी हुई गोबर की खाद में आंक, नीम के पत्तो व निंबोली का चूरा मिलाकर गड्ढें कोभरना चाहिए तथा प्रतिवर्ष खाद के साथ भी नीम एवं आंक के पत्ते मिलाने चाहिए।

जैविक आलू उत्पादन

अभिषेक कुमार पाल,रुचि **बिश्नोई**,बिनीता एम. बारा

*शोध छात्र,बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

**शोध छात्रा,आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन, कृषि विश्वविधालय, कोटा, राजस्थान

***असिस्टेंट प्रोफेसर, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन,सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

जैविक उत्पाद अब देश में और साथ ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक आला बाजार बना रहे हैं, आलू उनमें से एक है। देश के विभिन्न क्षेत्रों जैसे इंडो–गैंगेटिक मैदान, उत्तर, पूर्वी और दक्षिणी पहाड़ियों, और पठारी क्षेत्र में जैविक आलू की खेती की काफी संभावनाएं हैं। उत्तर प्रदेश राज्य इससे अछूता नहीं है,वर्ष 2019–2020में प्रदेश में 5.75लाख हेक्टेयर छेत्रफल में आलू बोया गया हैं, जिसके सापेक्ष 160लाख टन उत्पादन,वही उत्पादता 27.82टन प्रति हे. संभावित हैं, जबकि वर्ष 2018–19ये उत्पादकता 29.85 टन प्रति हे. थी।

जैविक उत्पादन के लिए राष्ट्रीय मानक (NSOP): प्रमाणन के लिए (NSOP)द्वारा निर्धारित सभी मानकों का पूरा किया जाना आवश्यक है। इनमें कई घटक शामिल हैं जिन्हें आलू उत्पादकों द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए। जब आलू उगाने वाले किसान पारंपरिक खेती की तुलना में जैविक कृषि के लिए जाते हैं, तो इसे 'रूपांतरण अवधि' कहा जाता है, जिसे प्रमाणन एजेंसी द्वारा पहले निरीक्षण के दिन से गिना जाता है। यह खेत स्थल पर निर्मित जैविक प्रबंधन प्रणाली और मिट्टी की उर्वरता को स्थापित करने के लिए आवश्यक है। सभी (NSOP)मानकों का पालन करते हुए एक पारंपरिक खेत को जैविक में परिवर्तित करने के लिए एक समग्र साइट विशिष्ट योजना तैयार की जाती है। यह अवधि उत्पादन चक्र की शुरुआत से कम से कम दो साल पहले ही आरम्भ होती है और प्रमाणन निकाय पिछले भूमि उपयोग और आसपास के वातावरण के आधार पर इस अवधि के विस्तार या कमी के लिए निर्णय ले सकते हैं। इस अवधि के दौरान कृषि उत्पाद को जैविक कृषि के उत्पादन के रूप में अच्छी तरह से लेबल और बेचा जाना चाहिए।

भूमि की तैयारी: आलू की जैविक खेती के लिए मृदा पीएच 4.8 से 5.8 के मध्य होना चाहिए। खेत की तेयारी के लिए मई–जून के दौरान हल के द्वारा जमीन की ऊपरी परत की जुताई की जाना चाहिए जिससे मिट्टी पर कार्बनिक कार्बन और जीव गतिविधि, बेहतर जड़ विकास के लिए मिट्टी को पर्याप्त रूप से वातित और ढीली बनी रहती हैं । जहां मिट्टी मे नमी की कमी हो वहाँ खेत की तैयारी से 7–10 दिन पहले पूर्व–रोपण हल्की सिंचाई की जाती है। एक मोलबोर्ड हल के साथ खेत की जुताई करें या डिस्क को 20–25 सेमी की गहराई तक और उसके बाद एक या दो टाइलिंग और क्रॉस प्लैंकिंग करें। खेत में सिंचाई के पानी के समुचित उपयोग और उचित जल निकासी के लिए उपयुक्त जगह होनी चाहिए।

आलू का बीज:NSOPमानदंडों के अनुसार, सभी बीज/रोपण सामग्री को जैविक प्रमाणित किया जाना चाहिए। यदि ऐसी सामग्री उपलब्ध नहीं है, तो रासायनिक रूप से अनुपचारित पारंपरिक बीज /रोपण सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। बीज एक विश्वसनीय स्रोत से खरीदा जाना चाहिए और 3-4 वर्षों के भीतर प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। जैविक खेती में आनुवंशिक रूप से इंजीनियर बीज, ट्रांसजेनिक पौधों या पौधों की सामग्री के उपयोग की अनुमति नहीं है। आलू की फसल में, बीज दर 3000–3500 किग्रा प्रति हे. होती हैं।

किस्में :NSOPमानदंडों का सुझाव है कि जैविक खेती में किस्मों को स्थानीय मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए, और कीटों और रोगों के लिए प्रतिरोधी होना चाहिए। एक फसल योजना में विभिन्न फसलों की किस्मों को चुनते समय आनुवंशिक विविधता को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

तालिकाः मैदानी इलाकों में जैविक खेती के तहत आलू की आशाजनक किस्में

किस्मे	कंद उपज (टन/हे.)		अवधि (दिन)	प्रतिरोधक
	बिक्रियोग्य	कुल		
कुफरी ख्याति	28.4	31.4	70-80	अगेती और पछेती झुलसा
कुफरी मोहन	28.3	29.9	100-90	पछेती झुलसा
कुफरी गरिमा	27.0	29.3	100-90	पछेती झुलसा
कुफरी पुष्कर	26.1	27.9	100-90	पछेती झुलसा, मस्सा रोग
कुफरी सदाबहार	26.0	27.0	100-90	पछेती झुलसा
कुफरी आनंद	26.0	27.6	100-90	पछेती झुलसा, पाला और पतिंगा के प्रति
कुफरी हिमसोना	21.5	26.0	120-110	पछेती झुलसा, मस्सा रोग
कुफरी चिपसोना– 3	20.3	23.1	110-100	पछेती झुलसा

रोपण का समय और रिक्तिः मैदानी क्षेत्रों में, रोपण का उपयुक्त समय अक्टूबर से नवंबर के बीच होता है। पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की रिक्ति को 67.5 सेमी और 20–35 सेमी के पौधे पर रखा जाता है। मध्यम बीज आकार के कंद (35–45 मिमी) 20 सेमी की दूरी पर लगाए जाते हैं रोपण की गहराई 8–10 सेमी रखी जाती है।

मल्चिंगः यह खरपतवारों को नियंत्रित करने, मिट्टी की नमी को संरक्षित करने और मिट्टी में कार्बनिक अवशेषों को विघटित करने में बहुत प्रभावी है। इस उद्देश्य के लिए फसल अवशेष, सूखी पुआल, सूखी घास, पौधे के पत्ते और अन्य वनस्पति सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। ऑर्गेनिक कृषि में प्लास्टिक मल्चिंग की भी अनुमति है क्योंकि प्रमाणन के दिशानिर्देशों के अनुसार इसे फिर से उपयोग या निपटान के लिए उपयोग करने के बाद क्षेत्र से हटा दिया जाता है।

फसल चक्रः आलू एक उथली जड़ वाली निकास वाली फसल है, इसलिए पूर्ववर्ती और सफल फसलें गहरी जड़ों वाली, कम पोषक तत्वों वाली और पानी की मांग वाली होनी चाहिए।आलू की फसलों की लगातार खेती से बीमारी और कीटों के निर्माण को कम किया जाता है, इसलिए, दो–तीन साल की फसल चक्र को अपनाया जा सकता है। फसल / अंतर–फसल प्रणाली में शामिल अन्य फसलों के लिए डिजाइन समान रूप से लिया जाता है। पश्चिम–मध्य मैदानी इलाकों में, मक्का+आलू+प्याज, मूंगफली+आलू+हरा चना, बासमती चावल+आलू+पछेती गेहूं, लोबिआ (सब्जी)+आलू+भिंडी, और मूंगफली+आलू+मक्का का अनुक्रम आशाजनक पाया गया।

हरी खादः यह अभ्यास उत्पादकता में सुधार करता है, मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है और खरपतवारों, कीटों और बीमारियों को नियंत्रित करता है। यह आलू की फसल में मिट्टी जनित रोगों जैसे काली खुरपका और आम पपड़ी आदि को कम करने में भी मदद करता है। किसी खेत की फसल योजना में गाछ मूंगा , सनई, लोबिया और ब्रैसिका आदि को समायोजित किया जाना चाहिए। उचित विघटन के लिए बुवाई के 40–50 दिनों के पहले हरी खाद की फसल को मिट्टी में मिला देना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधनःNSOPके दिशानिर्देशों के अनुसार, पौध उत्पादन के लिए केवल माइक्रोबियल, पौधे या जानवरों की उत्पत्ति के बायोडिग्रेडेबल सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। फसल अवशेषों की कम्पोस्टिंग और वर्मीकम्पोस्ट तैयार करना फसल के पोषण में खेत के कचरे के उपयोग के लिए एक आम और बहुत उपयोगी तकनीक है। यह जैविक खेती का अनिवार्य हिस्सा है। इस गतिविधि के लिए कई उपलब्ध तरीकों का उपयोग किया जा सकता है।

- भूमि की तैयारी के समय अच्छी तरह से विघटित फार्मयार्ड खाद @ 50 टन/हे. का अनुप्रयोग
- भूमि की तैयारी के समय बायोडायनामिक खाद @ 5 टन/हे. का आवेदन
- भूमि की तैयारी के समय वर्मीकम्पोस्ट @ 5 टन/हे.
- भूमि की तैयारी के समय नीम केक @ 1250 किग्रा/हे.
- भूमि की तैयारी के समय एजोस्पिरिलम और फॉस्फोबैक्टीरिया @ 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से जैव–उर्वरक को अनुप्रयोग करें।
- मिट्टी का पीएच बढ़ाने के लिए, डोलोमाइट @ 10 टन /हेक्टेयर का आवेदन किया जाना चाहिए।

पादप वृद्धि नियामक**:**

- बोने के 1 महीने बाद से 10 दिनों के अंतराल पर पंचगव्य @3 प्रतिशत का छिड़काव करें।
- बुवाई के एक महीने बाद से 15दिनों के अंतराल पर 5% वर्मीवाश का 5 बार छिड़काव करें।
- बुवाई के 65 वें दिन 50 लीटर पानी में हॉर्न सिलिका @2-5 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से स्प्रे करें।

जल प्रबंधनः आलू पानी के तनाव के प्रति संवेदनशील है, और स्टोलन का गठन और कंद निर्माण महत्वपूर्ण चरण हैं। मैदानों में, सिंचाई प्रारंभिक चरण में 8–10दिनों के अंतराल पर की जाती है और बाढ़ पद्धति में सर्दियों के दौरान इसे बढ़ाकर 12–15दिनों तक कर दिया जाता है। त्वचा की बेहतर सेटिंग के लिए हल्म काटने से 10–12दिन पहले पानी देना बंद कर दिया जाता है। स्प्रिंकलर या ड्रिप सिंचाई के साथ बेहतर उत्पादकता देखी गई है क्योंकि पानी की जड़ क्षेत्र में ठीक से लागू होती है और पोषक तत्व नुकसान न्यूनतम होते हैं। इस मामले में, सिंचाई 15–25मिमी Cumulative Pan Evaporation (CPE) पर

की जाती है। आमतौर पर, ड्रिप सिंचाई वैकल्पिक दिनों में 30–35मिनट के लिए 100–125%ब्च्म् पर की जाती है और आलू की फसल में 90–120मिनट के लिए 125–150CPE पर छिड़काव सप्ताह में दो बार किया जाता है।

खरपतवार प्रबंधनः

जैविक आलू के उत्पादन में खरपतवार नियंत्रण के लिए फसल में एक बार निराई दृगुड़ाई की आवश्यता होती हैं, जोकि बोआई के 20–30 दिन बाद की जातीं हैं। गुड़ाई के समय ध्यान देना चाहिए की भूमिगत तना बाहर ना जाएं।

रोग प्रबंधनः

झुलसा

आलू के झुलसा रोग को ठीक नहीं किया जा सकता है और विशेष रूप से एक कार्बनिक स्थिति में, निश्चित रूप से इससे बचाव ही सबसे अच्छी नीति है। प्रारंभिक कटाई, अगेती किस्मों के साथ, झुलसा आमतौर पर एक समस्या नहीं है, संभव हो तो शुरुआती किस्में लगाएं।

- रोग मुक्त बीजों का चुनाव करें
- झुलसा प्रतिरोधक वाली किस्मों(कुफरी स्वर्णा/ कुफरी सह्याद्री) का चयन करें
- यदि झुलसा की गंभीरता अधिक है तो एक अनुमत फफूंद नाशक (कॉपर ऑक्सीक्लोराइड % 0ण्2@) प्रयोग करें ग्राउंड क्रीपर्स को हटा दें जो संक्रमण के स्रोत के रूप में काम करते हैं।
- रोपण के बाद एक महीने के अंतराल पर 3 बार अग्निहस्त्र राख (200 ग्राम अग्निहस्त्र राख को 15 दिन तक 1 लीटर गोमूत्र में भिगोया जाता है) 10लीटर पानी में मिलाकर इसका छिड़काव करें

भूरा विगलनः

- रोग मुक्त बीजों का चयन करें
- जल निकासी की उचित सुविधा दें
- ग्रसित पौधों को हटा दें और नष्ट कर दें

वायरस जनित रोगः

- वायरस मुक्त आलू कंद का उपयोग करें
- वायरस से प्रभावित पौधों को नियमित रूप से रोगन करें
- रोपण के बाद 45वें, 60 वें और 75 वें दिन %10 बिछुआ (nettle) पत्ती के अर्क का छिड़काव करके एफिड वैक्टर को नियंत्रित करें

नेमाटोडः

- पुटी(cyst) नेमाटोड के लिए, कुफरी सवर्णा नामक एक प्रतिरोधी किस्म उगाई जा सकती हैं
- वैकल्पिक पंक्तियों में गेंदा जैसी ट्रैप फसल, जड़ गाँठ निमेटोड को कम कर सकती है
- स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस का आवेदन 10@किलो / हेक्टेयर किया जा सकता हैं
- आलू बोने के समय सरसों की बुआई करें और आलू की पुटी (cyst) निमेटोड के नियंत्रण के लिए 45 वें दिन सरसों का साग तैयार करें।

कीट प्रबंधनः

एफिड्स और सफेद मक्खियांः

- येलो स्टीकी ट्रैप (1.0 मीटर • 1.5 मीटर) 10–12 प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें
- रोपण के बाद 45 वें, 60 वें और 75 वें दिन, 10%अदरक–मिर्च के रस का छिड़काव करें
- 3% नीम के तेल का छिड़काव करें
- सूखे नीम के पत्तो का उपयोग मल्चिंग के लिए करें

आलू कंद पतंगाः

- कंद के उथले रोपण से बचें। कंद को 10 – 15 सेमी की गहराई पर रोपित करें
- फेरोमोन ट्रैप @ 20 प्रति हेक्टेयर स्थापित करें
- पर्ण क्षति को नियंत्रित करने के लिए 5 % नीम के बीज की गिरी के रस का छिड़काव करें
- गोदामों में ओटपोसिटिंग मोथ से सूखे लैंटाना और नीलगिरी के पत्तों के साथ आलू के ढेर की ऊपरी सतह को ढंकते हैं।
- कटावाः
- वयस्क पतंगों को आकर्षित करने के लिए गर्मियों के दौरान प्रकाश जाल स्थापित करें।
- दिन के समय में खेत की सिंचाई छिड़काव सिंचाई प्रणाली से करें जिससे लार्वा का पक्षियों द्वारा परभक्षण हो जाता हैं ।
- मिट्टी में पाइरेथ्रम का अनुप्रयोग।

कटाईः

आलू की फसल से अच्छी उपज लेने के लिए, कटाई से 8–10 दिन पहले सिंचाई बंद कर दें जिससे, मिट्टी की नमी की नमी बनी रही, कंद खुदाई मे आसानी रहें तथा त्वचा की उचित सेटिंग हो। गाइड कुदाल और खुरपा जैसे हाथ औजार का उपयोग करके आलू की खुदाई की जाती है। जानवरों द्वारा तैयार हल एक अन्य विकल्प है और बड़े खेतों में ट्रैक्टर संचालित खुदाई करने वालों द्वारा कटाई की जाती है। कंद को फसल के अवशेषों की मोटी परत से ढके 1.5 मीटर ऊंचाई के

ढेर में रखा जाना चाहिए और 10–15 दिनों के लिए त्वचा की परिपक्वता के लिए छोड़ देना चाहिए। इस प्रक्रिया के बाद ग्रेडिंग, मार्केटिंग और स्टोरेज किया जाता है।

उपजः

जैविक आलू की उपज किस्म तथा मिट्टी की उर्वरता, फसल प्रबंधन पर निर्भर करती हैं, आलू की ओसत उपज अगेती किस्मों मे 200 से 400 क्विंटल तथा पछेती किस्मों में 300–600 क्विंटल तक होती हैं।

फसल अवशेष: एक समस्या या टिकाऊ कृषि के लिए एक अवसर

पंकज और डॉ के. के. भारद्वाज

मृदा विज्ञान विभाग, सीसीएस हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय(हिसार)- 125004
ईमेल : pankajsingroha95@gmail.com

परिचय:

धान-गेहूं लाखों लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा, रोजगार, आय और आजीविका के लिए एक प्रमुख फसल प्रणाली है, और दक्षिण एशिया के भारत-गंगा मैदानों में 135 लाख हेक्टेयर पर प्रचलित है। हालांकि, बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए इस प्रणाली की उत्पादकता को बनाए रखने की क्षमता को प्राकृतिक संसाधनों (जल, वायु, मिट्टी और जैव विविधता) की कमी और/या क्षरण, कृषि श्रम की कमी और उच्च उत्पादन लागत में वृद्धि से खतरा है। वर्तमान प्रथाओं में दोनों फसलों के लिए गहन जुताई और सभी फसल अवशेषों को हटाना शामिल है, जिससे पोषक तत्वों की कमी और मिट्टी की उर्वरता में कमी आती है। इस सघन फसल प्रणाली में उत्पादकता वृद्धि के ठहराव के कारण मृदा स्वास्थ्य के पुनर्निर्माण के लिए संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों के उपयोग की पुरजोर वकालत हुई है। फसल अवशेष प्रबंधन (सतह गीली घास और निगमन के रूप में अवशेष प्रतिधारण) को पानी, श्रम, ऊर्जा संसाधनों और धान-गेहूं प्रणाली की स्थिरता से संबंधित समस्याओं को हल करने के लिए पारंपरिक प्रथाओं का विकल्प माना जाता है (जाट *एट अल* 2016)। जुताई, भूसे की अवधारण और फसल रोटेशन में परिवर्तन से मात्रा में उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं, फसल अवशेषों की गुणवत्ता, उनके मौसमी और स्थानिक भिन्नता, ऊपर और नीचे जमीन के आदानों और पोषक तत्वों की गतिशीलता के बीच अनुपात, जो सभी मिट्टी के सूक्ष्मजीवों और मृदा माइक्रोबियल प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। लम्बे समय के लिए अनुचित जुताई को अपनाना मिट्टी के जैविक, शारीरिक और रासायनिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है, जिसे "गरीब, कम उत्तरदायी मिट्टी" के रूप में जाना जाता है।

अवशेषों को बनाए रखने के फायदे:

भारत में विभिन्न फसलों से सालाना लगभग 686 मिलियन टन फसल अवशेषों का उत्पादन होता है। उत्तर प्रदेश, पंजाब (45 मिलियन टन) के बाद अधिकतम अनाज फसल अवशेष उत्पन्न करता है जबकि गुजरात और राजस्थान क्रमशः फाइबर और तेल बीज फसल अवशेषों की अधिकतम मात्रा का उत्पादन करते हैं (हिलोढरी एट अल 2014)। किसानों ने गेहूं बोने से पहले चावल के अवशेष जलाने की प्रथा अपनाई, क्योंकि यह लागत प्रभावी और निपटान की आसान विधि है। भारत के उत्तर-पश्चिमी राज्यों में धान-गेहूं प्रणाली से कुल अवशेषों का लगभग 68% जलाया जाता

है, जिससे पर्यावरण को नुकसान होता है और मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट आती है। पंजाब में किसानों द्वारा अपने खेतों पर लगभग 22 मिलियन टन चावल के अवशेष का उत्पादन किया जाता है और 18.7 मिलियन टन जलाया जाता है। फसल के बाद गेहूं के अवशेषों के अधिकांश चारे के रूप में उपयोग किया जाता है, और किसी भी शेष अवशेषों को आम तौर पर जला दिया जाता है । गहन जुताई और चावल के भूसे के जलने से न केवल पोषक तत्वों का नुकसान होता है, बल्कि अनुकूल रोगाणुओं की मृत्यु, फसल उत्पादकता में गिरावट और ग्रीनहाउस गैसों के बड़े उत्सर्जन के कारण पर्यावरण प्रदूषण राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए प्रमुख स्थिरता के मुद्दे हैं (NAAS 2017)।

बड़े पैमाने पर *इन-सीटू* राइस स्ट्रॉ का प्रबंधन करने के लिए मुल्चर, हैप्पी सीडर, पीएयू सुपर एसएमएस, पीएयू स्ट्रॉ कटर-सह-स्प्रेडर, मोल्ड बोर्ड हल जैसी कई मशीनों का इस्तेमाल किया गया है । सतह गीली घास के रूप में फसल अवशेषों को बनाए रखने और शामिल करने से पानी की उपलब्धता बढ़ाने, खरपतवार कम करने, मिट्टी और बेहतर मृदा गुणों (जाट *एट अल* 2016) में कार्बनिक यौगिकों को बढ़ाने में मदद मिलती है, और गेहूं की पैदावार में भी वृद्धि होती है (सिद्धू *एट अल* 2015)। फसल अवशेषों को बनाए रखने से सभी कार्बन पूल विशेष रूप से लैबिल कार्बन पूल में वृद्धि होती है, जिसका उपयोग सूक्ष्मजीवों द्वारा ऊर्जा के स्रोत के रूप में किया जाता है (नंदन *एट अल* 2019)। मृदा कार्बनिक कार्बन मृदा खाद्य वेब के लिए एक ईंधन के रूप में कार्य करता है और इसलिए मिट्टी की गुणवत्ता और इसकी उत्पादकता को बनाए रखने के लिए पोषक तत्व साइकिलिंग को अत्यधिक प्रभावित करता है। पारंपरिक जुताई के साथ अवशेषों का समावेश फसल अवशेषों के निपटान के लिए वैकल्पिक तरीका है। हालांकि, पारंपरिक जुताई पूरी मिट्टी की सतह को अस्तव्यस्त करता है क्योंकि इसमें जुताई की संख्या शामिल होती है। धान-गेहूं प्रणाली में अवशेषों का समावेश न तो व्यवहार्य है और न ही किफायती क्योंकि गेहूं की कटाई और बुवाई के बीच अवशेषों के अपघटन के लिए बहुत कम समय का अंतराल उपलब्ध है । मिट्टी में फसल अवशेषों का उपयोग मिट्टी में कार्बनिक कार्बन सामग्री को बनाए रखने के लिए एक बड़े पैमाने पर अपनाई गई तकनीक है और भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता को भी बढ़ाता है (लियन *एट अल* 2016)। गहन जुताई प्रथाओं को अपनाने से मृदा कार्बनिक पदार्थ में कमी आती है, जिससे मृदा उर्वरता में कमी आती है । अवशेष प्रतिधारण या निगमन के साथ-साथ संरक्षण कृषि प्रथाएं चावल आधारित फसल प्रणाली में स्थिरता बनाए रखने में मदद करती हैं (नंदन *एट अल* 2019)। धान अवशेष मृदा कार्बनिक कार्बन का एक स्रोत है जो समग्र मिट्टी की विशेषताओं (संरचना, जल प्रतिधारण, प्रजनन और जैविक विविधता) को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह दोहरे कार्यों यानी माइक्रोबियल गतिविधि, जैविक विविधता और मृदा एंजाइम गतिविधियों के लिए ऊर्जा और सब्सट्रेट्स के स्रोत के रूप में कार्य करता है । इसलिए, जैविक रूप से सक्रिय लैबिल सी पूल, माइक्रोबियल बायोमास कार्बन और मिट्टी एंजाइमों के संदर्भ में मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ में परिवर्तन प्रमुख मृदा गुणवत्ता संकेतक के रूप में काम करते हैं (सैकिया *एट अल* 2020)। चावल अवशेष प्रबंधन आधारित प्रथाओं के कारण मिट्टी के जैविक गुणों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं और ये परिवर्तन मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। मृदा कार्बनिक कार्बन और मृदा की गुणवत्ता एक दूसरे से जुड़ी हुई है और मिट्टी की गुणवत्ता के लिए एक महत्वपूर्ण संकेतक के रूप में माना जाता है । इसलिए, उपयुक्त अवशेष प्रबंधन

प्रथाओं को अपनाकर हम पर्यावरण प्रदूषण को कम कर सकते हैं और मृदा उर्वरता और उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं।

References:

Hiloidhari M, Das D and Baruah D C (2014) Bioenergy potential from crop residue biomass in India. *Renew Sust Energ Rev* **32:** 504-12.

Jat M L, Dagar J C, Sapkota T B, Singh Y, Govaerts B, Ridaura S L, Saharawat Y S, Sharma R K, Tetarwal J P, Jat R K, Hobbs H and Stirling C (2016) Climate change and agriculture: adaptation strategies and mitigation opportunities for food security in South Asia and Latin America. In *Advances in Agronomy*. Acadmic Press, Pp 127-235.

Lian T, Wang G, Yu Z, Li Y, Liu X and Jin J (2016) Carbon input from 13 C-labelled soybean residues in particulate organic carbon fractions in a Mollisol. *Biol Fertil Soils* **52**: 331-39.

NAAS (2017) Innovative viable solution to rice residue burning in rice-wheat cropping system through concurrent use of super straw management system-fitted combines and Turbo Happy Seeder. Policy Brief No. 2, National Academy of Agricultural Sciences, New Delhi. 16 p.

Nandan R, Singh V, Singh S S, Kumar V, Hazra K K, Nath C P and McDonald A (2019) Impact of conservation tillage in rice–based cropping systems on soil aggregation, carbon pools and nutrients. *Geoderma* **340:** 104-14.

Saikia R, Sharma S, Thind H S and Singh Y (2020) Tillage and residue management practices affect soil biological indicators in a rice–wheat cropping system in north-western India. *Soil Use Manag* **36:** 157-72.

Sidhu H S, Singh M, Singh Y, Blackwell J, Humphreys E, Jat M L, Singh V and Singh S (2015) Development and evaluation of the Turbo Happy Seeder for sowing wheat into heavy rice residues in NW India. *Field Crops Res* **184**: 201-12.

पोषक तत्व उपयोग दक्षता और फसल उत्पादन बढ़ानेहेतु पर्णीय छिड़काव

सुकीर्ति, डॉ. मनोज कुमार शर्मा, एंव डॉ. कृष्ण कुमार भारद्वाज

चौधरी चरण सिहं हरियाणा कृषि विश्वविधालय, हिसार– हरियाणा

पर्णीय छिड़काव पौधों को सीधे उनकी पत्तियों पर तरल उर्वरक लगाकर पोषण देने की तकनीक है। इस तकनीक का उपयोग प्रमुख और मामूली पोषक तत्वों, पौधों के हार्मोन, उत्तेजक और अन्य लाभकारी पदार्थों की पूरक खुराक देने के साधन के रूप में किया जाता है। पर्णीय छिड़काव के देखे गए प्रभावों में उपज में वृद्धि, रोगों और कीटों के प्रतिरोध, सूखा सहनशीलता में सुधार और फसल की गुणवत्ता में वृद्धि शामिल है। पौधों की प्रतिक्रिया उसकी प्रजातियों, उर्वरक के प्रकार, सांद्रता और आवेदन की आवृत्ति के साथ–साथ पौधे के विकास के चरण पर निर्भर करती है। पर्ण अनुप्रयोग अक्सर पौधे विकास के विशिष्ट चरणों के अनुरूप किया जाता है।

उच्च फसल उत्पादन के लिए जैविक और वाणिज्यिक रूपों मे उपलब्ध किसी भी उर्वरक का मिट्टी मे उपयोग उसके पूरे लाभ को सीमित करता है ये मुख्यतया मिट्टी के जैविक, रासायनिक और भौतिक गुणों के कारण होता है जिससे पोषक तत्वों की दक्षता कम हो जाती है। वाणिज्यिक उर्वरकों (नाइट्रोजन, फास्फोरस, और पोटेशियम) की बढ़ती लागत भी उनके गैर–पारंपरिक उर्वरक अनुप्रयोगों को बढ़ावा दे रही है, जिनमे से पर्ण अनुप्रयोग तकनीक किसानो को सबसे अधिक आकर्षित करती है, सिंचाई जल के साथ उर्वरक का प्रयोग (फर्टीगेशन) भी एक अच्छा तरीका है लेकिन पर्णीय छिड़काव पौधे की सभी पोषक आवश्यकताओं का अधिक ख्याल रखता है। पर्ण अनुप्रयोग का उपयोग आमतौर पर पोषण की स्थिति, विकास के बेहतर प्रबंधन, कमियों को जल्दी से ठीक करने और बेहतर फसल की गुणवत्ता के लिए रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार के लिए किया जाता है।

पर्ण अनुप्रयोग के उद्देश्य

1. महत्वपूर्ण चरम आवश्यकता की सीमा पर आवेदन करके उच्च उपज वाली फसलों की उत्पादन प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना।

2. प्रतिकूल परिस्थितियों (तनाव) में फसल वृद्धि को बढ़ावा देना।

3. पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता में सुधार करना।

4. रासायनिक भार को कम करने के लिए।

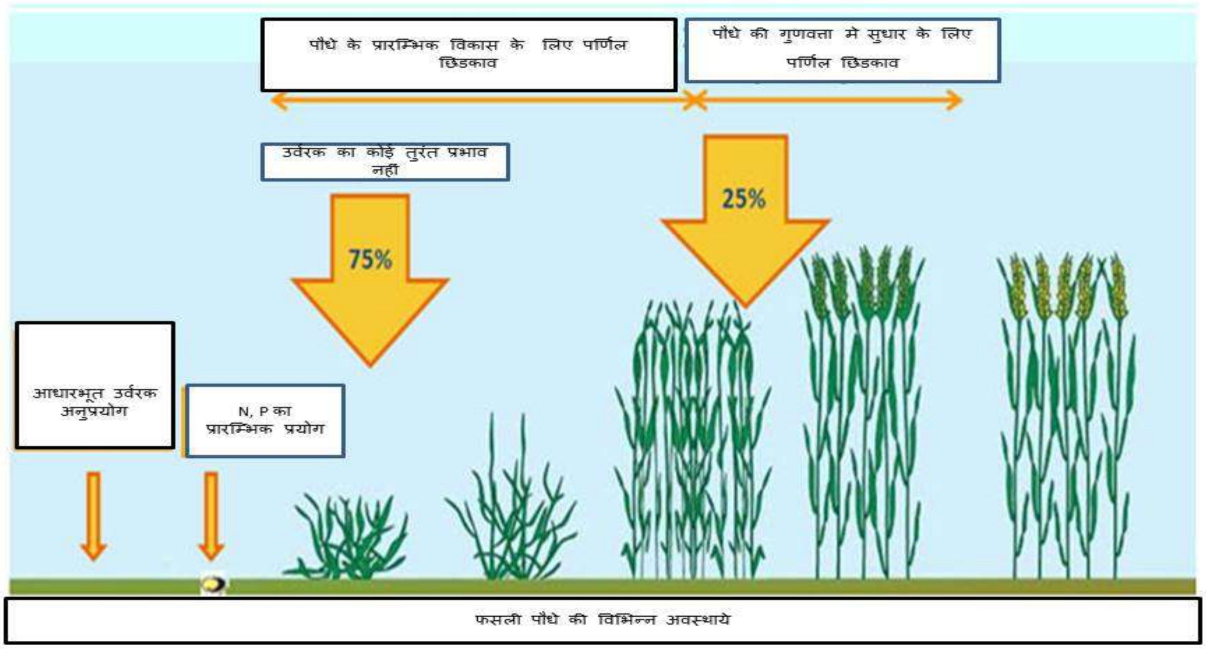

पर्ण अनुप्रयोग के घटक

1. तरल उर्वरकः–

• पौधों के पोषण के लिए आवश्यक तत्वों की आपूर्ति के हेतु मिट्टी में मिलाये जाने वाले या फसल के पत्तों पर सीधे उपयोग होने वाले उर्वरक। ये उर्वरक तरल, जलीय घोल के रूप में हो सकते हैं।

• तरल उर्वरक पौधों को आसानी से अवशोषित, घुलनशील पोषक तत्वों की सांद्रता प्रदान करते हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य और उत्पादकता में वृद्धि होती है।

2. जल में घुलनशील उर्वरकः–

• एक पाउडर या छोटी गोलियो के रूप मे उर्वरक जो पानी के साथ मिश्रित होता है और मिट्टी पर डाला जाता है या पौधों के पत्ते पर छिड़का जाता है।

•पानी में घुलनशील उर्वरक

1.यूरिया

2.यूरिया फॉस्फेट

3.मैग्नीशियम सलफेट

4.पोटेशियम सल्फेट

5.अमोनियम सल्फेट

6. NPK 18–18–18

7. NPK15 –30– 15

3. स्टीकरः–

•स्टिकर वे एजेंट हैं जो लक्षित पौधे पर स्प्रे बूंदों के आसंजन में सुधार करते हैं।

• एक उर्वरक जो पानी में घुलनशील होता है, यह भारी वर्षा के दौरान पत्ती से धुल सकता है।

4. न्यूट्रलाइजिंग एजेंटः–

• यह एक फोम कंसंट्रेट फॉर्मूलेशन है जिसे एसिड या क्षारीय पानी–आधारित घोल के साथ मिलाया जा सकता है और एक विस्तारित फोम का उत्पादन करने के लिए एक एयर–एस्पिरेटेड फोम डिस्चार्ज डिवाइस के माध्यम से इसे छिडका जा सकता है ।

• उत्पादित फोम बेहद स्थिर होता है, जिसका अर्थ है कि यह धीरे–धीरे बुलबुले की दीवारों से अपना घोल छोड़ेगा और दूसरे रसायन को बेअसर कर देगा।

पर्ण अनुप्रयोग तकनीक क्यों?

•पौधे की पोषण स्थिति का बेहतर प्रबंधन

•पौधों की वृद्धि में सुधार

•पोषक तत्वों की कमी को तुरंत ठीक करने की क्षमता

•रोगप्रतिरोधक क्षमता में सुधार

• फसल की गुणवत्ता में सुधार

पर्ण अनुप्रयोग तकनीक मानदंड

फसल के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा।

•वृद्धि के स्तर पर आवेदन की प्रभावशीलता जो फसल की प्रतिक्रिया से सबसे अच्छी तरह मेल खाती है।

•ग्रहण के लिए उत्पाद तैयार करने की उपयुक्तता।

• फसल के पत्तों पर प्रयुक्त पर्ण उत्पाद की विधि, समय और सांद्रता का प्रभाव।

सफलता की कुंजी

•पत्ती की सतह और अनुप्रयोग कि गयी पर्ण सामग्री के बीच परस्पर क्रिया को समझना।

• उर्वरक को पौधे द्वारा ग्रहण करने कि क्षमता और पोषक तत्वो कि गतिशीलता।

• स्प्रे कवरेज,व बूंदो का आकार, आदि।

•उत्पाद की गुणवत्ता को समझना– विशेष रूप से क्लोराइड और नाइट्रेट आधारित उत्पादों का प्रयोग नही करना।

निम्नलिखित शर्तों के तहत पर्ण आवेदन को प्राथमिकता दी जा सकती है

•जब पोषक तत्वों की कमी के लक्षण कमी के प्रारंभिक चरण के दौरान देखे गए।

•प्रतिकूल मिट्टी की भौतिक और रासायनिक स्थितियाँ जो उर्वरक उपयोग दक्षता (थ्न्म) को कम करती हैं।

पर्ण अनुप्रयोग मे सूक्ष्म पोषक तत्वो की थोड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है और इसे जड़ या मिट्टी के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रदान नहीं किया जा सकता है।

•सूखे की अवधि के दौरान जहां मिट्टी में नमी की कमी के कारण मिट्टी में आवेदन नहीं किया जा सकता है।

• लौह, तांबा, बोरॉन, जस्ता और मैंगनीज जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों के आवेदन के लिए पत्तेदार आवेदन प्रभावी है।

पर्ण अनुप्रयोग (स्प्रे) के लिए आदर्श अवधि

• पर्ण अनुप्रयोग ऐसे समय पर किया जाना चाहिए जब हवा की सापेक्षिक आर्द्रता अधिक होती है अर्थात सुबह और शाम के समय, दिन के गर्म घंटों के दौरान नहीं किया जाना चाहिए।

• एक अन्य लाभ यह है कि स्प्रे किया गया पदार्थ सुबह और शाम के समय अधिक धीरे–धीरे वाष्पित होता है और तेज धूप से पत्तियों के जलने का खतरा कम होता है।

• शाम और रात में उच्च आर्द्रता के कारण सूखे स्प्रे पदार्थ से भी पोषक तत्व घुल जाते हैं पोषक तत्व पत्ती में प्रवेश कर जाते है।

पर्ण अनुप्रयोग की क्रियाविधि

पर्ण उर्वरक पोषक तत्व जो पौधे द्वारा विकास के लिए उपयोग किया जाता है, उसे कोशिका द्रव्य में प्रवेश करने से पहले पत्ती में प्रवेश करना आवश्यक है ।

•इसके लिए पोषक तत्व को पहले बाहरी क्यूटीकल (पत्ती कि बाहरी सतह) और अंतर्निहित एपिडर्मल कोशिका की दीवार में प्रभावी ढंग से प्रवेश करना होगा ।

• एक बार प्रवेश होने के बाद, कोशिका द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण जड़ों द्वारा अवशोषण के समान होता है।

•पोषक तत्वों के पर्णील अनुप्रयोग मार्ग के सभी घटको मे , क्यूटीकल सबसे बड़ा प्रतिरोध प्रदान करती है।

पर्ण अनुप्रयोग कब सर्वोत्तम होता है?

• कैल्शियम के मामले में, जड़ों से फलों तक परिवहन सीमित है, इसलिए पर्ण अनुप्रयोग सबसे अच्छा तरीका है जिसे हम फलों के ऊतकों में अधिक कैल्शियम प्राप्त कर सकते है, ताकि फलो कि तुड़ाई के बाद के नुकसान को कम किया जा सके।कैल्शियम स्प्रे मे संभावित खर्च तुड़ाई के बाद के नुकसान से कही कम होता है।

पत्ति की क्यूटीकलः—

•पत्ती की क्यूटीकल पत्ती और अन्य अंगों के बाहर की ओर एक पतला आवरण होता है जो पौधे को पर्यावरण की चरम सीमाओं से बचाता है।

• क्यूटिकल पर्यावरण और प्रबंधन में भी बदलाव के प्रति प्रतिक्रिया करती है। जैसे सूखा और अत्यधिक तापमान की स्थिति।

क्यूटिकल के माध्यम से पोषक तत्वों का संचलनः—

•मूल रूप से यह माना गया था कि एक्टोडेसमेटा में विलेय की गति होती है।

•ये ऋणात्मक आवेशों के साथ पंक्तिबद्ध होते हैं जो घनत्व में बढ़ते हुए धनायनों की आंतरिक गति को सुविधाजनक बनाते हैं।

• क्यूटिकल के माध्यम से वास्तविक गति पोषक तत्वो की सांद्रता, आणविक आकार, कार्बनिक या अकार्बनिक रूप, पत्ती की सतह पर उर्वरक के ठहराव का समय, क्यूटिकल में चार्ज घनत्व पर निर्भर करती है।

पानी की कमी के दबाव के साथ पत्ती के क्यूटिकल में परिवर्तनः—

• क्यूटिकल मोटाई में 33% की वृद्धि हो जाती है

• क्यूटिकल संरचना मुख्य रूप से उच्च आणविक भार (लंबी श्रृंखला) वैक्स में बदल जाती है जिससे हाइड्रोफोबिसिटी बढ़ जाती है ।

•इसके परिणामस्वरूप कृषि रसायन (यूरिया, डिफोलिएंट्स आदि) के अवशोषण में कमी आती है।

चेलेट का पर्ण छिड़कावः—

चेलेटः— एक चेलेट ग्रीक शब्द 'चेला' से लिया गया एक शब्द है जिसका अर्थ है 'पंजे',एक प्रकार के कार्बनिक रासायनिक यौगिक का वर्णन करने के लिए जिसमें अणु के धातु के हिस्से को इतनी मजबूती से रखा जाता है कि इसे दूसरे के संपर्क में आने पर भी छोड़ा नहीं जाता है।

संक्षेप	नाम
CIT	साइट्रिक एसिड
CDTA	साइक्लोहेक्सेन डायमाइन टेट्रा एसिटिक एसिड
DTPA	डायथिलीन ट्रायमाइन पेंटा एसिटिक एसिड
EDDHA	एथिलीन डायमाइन डाइहाइड्रॉक्सी फिनाइल एसिटिक एसिड
EDTA	एथिलीन डायमाइन टेट्रा एसिटिक एसिड
EGTA	एथिलीन ग्लाइकॉल टेट्रा एसिटिक एसिड
HEEDTA	हाइड्रॉक्सी एथिल एथिलीन डायमाइन ट्राई एसिटिक एसिड
NTA	नाइट्रिलो ट्राई एसिटिक एसिड

चेलेट्स के लाभः—

•कम मात्रा

•अधिक अवशोषण

•अधिक स्थानान्तरण

•कोई 'जला' क्षति नहीं

• क्षारीय स्थितियां

•अनुकूलता

पर्ण अनुप्रयोग को प्रभावित करने वाले कारकः–

•हवा का तापमानः उच्च तापमान में यह पोषण के वाष्पीकरण का कारण बनता है और स्प्रे के प्रभाव को कम करता है।

• आपेक्षिक आर्द्रताः उच्च सापेक्षिक आर्द्रता पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाती है और कोशिका की तीक्ष्णता को भी बनाए रखती है, कम सापेक्षिक आर्द्रता के समय अवशोषण कम होता है।

•आवेदन के बाद सिंचाईः पर्ण स्प्रे के बाद सिंचाई नहीं कि जानी चाहिए।

•आवेदन के लिए दिन का समयः पर्ण छिड़काव सुबह जल्दी करना चाहिए और देर शाम को यह सबसे अधिक लाभदायक होता है।

•वर्षाः वर्षा के तुरंत बाद और पहले पर्ण छिड़काव नहीं करना चाहिए।

पर्ण अनुप्रयोग के लाभः–

•**उच्च उपजः** पर्ण उर्वरक पौधे को उसकी वास्तविक क्षमता तक बढ़ने के लिए अतिरिक्त पोषक तत्व प्रदान करते है।

•**स्वस्थ पौधेः** पर्ण उर्वरक अतिरिक्त पोषक तत्व प्रदान करता है जिसकी पौधे की कीट और रोगो के खिलाफ प्रतिरक्षा और सुदृढ हो जाती है।

•**तत्काल परिणामः** पत्ती के रंध्र में पोषक तत्वों को जल्दी से सोखने की क्षमता होती है। तथा इनका प्रभाव भी शीघ्र देखने को मिलता है।

•**कम खर्चीलाः** पर्ण उर्वरक उपयोग करने के सबसे महत्वपूर्ण लाभों में से एक यह है कि यह फसल पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने के कई अन्य साधनों की तुलना में सस्ता है।

सब्जी उत्पादनः जीविका आवर्धन

तुषार कांति बेहेरा, रामेश्वर सिंह एवं डी. आर. भारद्वाज

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221305 (उत्तर प्रदेश)

देश की 68 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है जिसमें 58 प्रतिशत लोग रोजगार के रूप में कृषि को अपनाते हैं। कृषि के अन्तर्गत किसान पूरे वर्ष में एक या दो फसल उगाते हैं जिससे वर्ष के शेष समय रोजगार नहीं मिलता है। संस्थान द्वारा विकसित सब्जियों की कुछ किस्में प्रचलित फसल चक्रों में समावेशित की जा सकती है। सब्जी फसलों के खाने योग्य भाग की कटाई/तुड़ाई निश्चित अंतराल पर कई बार की जाती है जिससे किसानों को नियमित रोजगार एवं आय प्राप्त होती है। सब्जियों का मानव पोषण में बहुत महत्व है, इसलिये घर के आस–पास खाली जगहों एवं गमलों में सब्जियाँ उगाकर प्रतिदिन की आवश्यकता की हरी सब्जी प्राप्त होती है जिससे पोषण सुरक्षा मिलती है एवं खर्च में बचत होती है। संस्थान द्वारा सब्जियों की खेती को बढ़ावा देने के लिए उन्नत सस्त तकनीकें, अधिक उत्पादन देने वाली एवं रोग तथा कीटों के प्रति सहनशील किस्में विकसित की गयी है एवं बदलते जलवायु की परिदृश्य को ध्यान में रखकर नयी–नयी किस्में/संकरों एवं उन्नत सस्य तकनीकें विकसित करने का शोध कार्य चल रहा है। सब्जियों की सबसे बड़ी समस्या इनका शीघ्र खराब हो जाना है। जिस समय सब्जियों की उपलब्धता बाजार में अधिक होती है उस समय मूल्य कम हो जाता है जिससे किसानों को नुकसान होता है, इसको दूर करने के लिए कटाई उपरान्त प्रबंधन एवं प्रसंस्करण कार्य पर शोध कार्य किया जा रहा है। संस्थान द्वारा सहजन सूप, करेला चिप्स, पालक, गोभी, पत्तागोभी को सुखाकर सुरक्षित भण्डारण एवं खाने योग्य कोटिंग द्वारा सब्जियों का स्वजीवन बढ़ाने की विधि विकसित की गयी है। वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुनी करने के लिए केन्द्र सरकार के द्वारा दिये गये दिशा–निर्देशों के अनुसार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) द्वारा विगत 3–4 वर्षो से कई महत्वपूर्ण परियोजनायें चलायी जा रही हैं। ये परियोजनायें किसानों को सीधे तौर पर लाभान्वित कर रही हैं। जिससे किसान अपनी आवश्यकताओं को पूरी करते हुए उत्पाद को बाजार में बेचकर लाभ प्राप्त कर रहा है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान द्वारा फार्मर फर्स्ट, आदिवासी उपयोजना (टीएसपी), अनुसूचित जाति उपयोजना (एससीएसपी) तथा एन.ए.एस.एफ. परियोजनाओं को उत्तर प्रदेश के कई जिलों, जैसे–वाराणसी, सोनभद्र, चन्दौली, मिर्जापुर, गाजीपुर, जौनपुर, मऊ आदि में सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है।

संस्थान की किस्मों से किसानों का जीविकावर्धन

संस्थानकी प्रचलित किस्में जिससे किसान की जीविका में वृद्धि हो रही है, उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

काशी कंचन लोबिया की झाड़ीदार, गोल्डेन बीन मोजैक प्रतिरोधी, वर्ष में फरवरी से अक्टूबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त, बुवाई के 45–50 दिन बाद पहली तुड़ाई शुरू हो जाती है। प्रति हेक्टेयर 125–150 कुन्तल हरी फली प्राप्त होती है।

काशी निधि लोबिया की झाड़ीदार किस्म, गोल्डेन बीन मोजैक प्रतिरोधी, वर्ष में फरवरी से अक्टूबर तक बुवाई के लिए उपयुक्त, बुवाई के 45–50 दिन बाद पहली तुड़ाई शुरू हो जाती है। फली की लम्बाई 30–40 सेमी., रंग गहरा हरा होता है। प्रति हेक्टेयर उपज 150–160 कु. हरी फली प्राप्त होती है।

काशी प्रगति भिण्डी की अधिक उत्पादन (150–160 कुन्तल प्रति हेक्टेयर) देने वाली किस्म है। इसके पौधे की शुरू की 3–4 गांठों को छोड़कर सभी गांठों पर फली आती है। फलियां 10–12 सेमी. लम्बी हरी होती है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक की सहनशील है।

काशी क्रांति भिण्डी की इस किस्म की फलियां गहरी हरी, 10–12 सेमी. लम्बी होती है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन 150–160 कुन्तल होता है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक के प्रति सहनशील होती है।

काशी चमन भिण्डी की यह किस्म भिण्डी की पीत शिरा मोजैक की प्रतिरोधी है। फलियां हल्के हरे रंग की 10–12 सेमी. लम्बी होती है। इस किस्म का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 150 कुन्तल होती है।

काशी लालिमा भिण्डी की यह किस्म पीत शिरा मोजैक प्रतिरोधी है। इसकी फली लाल रंग की 10–15 सेमी. लम्बी होती है। इस किस्म का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 120 कुन्तल होती है।

काशी अनमोल मिर्च की यह किस्म पर्ण कुंचन रोग के प्रति सहनशील है। इस किस्म की फलियां 4–5 सेमी. लम्बी गहरे हरे रंग की चमकीली होती है। इस किस्म की औसत उपज 200–250 कु. प्रति हेक्टेयर होती है। रोपण के 50–60 दिन बाद तुड़ाई शुरू हो जाती है।

काशी आभा मिर्च की यह किस्म पर्ण कुंचन रोग की प्रतिरोधी है इस किस्म के फलियों बुलेट आकार की होती है। फलियों का रंग हल्का हरा होता है। फलियों की लम्बाई 3–4 सेमी. होती है। इस किस्म का औसत उत्पादन 150–200 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

काशी अमन टमाटर की यह किस्म पर्ण कुंचन विषाणु की सहनशील है। इस किस्म के फल नाशपाती आकार के लाल रंग के होते है। इस किस्म की औसत उपज 500– 600 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

काशी विशेष टमाटर का यह किस्म पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति सहनशील है। इस किस्म के फल अण्डाकार लाल रंग के होते हैं। इस किस्म की औसत उपज 500–600 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

काशी संदेश बैगन की यह संकर किस्म है। इस किस्म के फल गोल, चमकीले, बैंगनी रंग, फल का औसत वजन 250–300 ग्राम एवं प्रति हेक्टेयर उपज 600–700 कुन्तल होती हैं फल का कैलिक्स हरे रंग का होता है।

काशी उत्तम बैंगन की यह किस्म अधिक उपज देने वाली है। फल गोल चमकीले बैगनी रंग के होता है। फल का कैलिक्स हरे रंग का होता है। इस किस्म की औसत उपज 500–600 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

काशी तरू बैंगन की इस किस्म का फल लम्बा 25–30 सेमी., रंग बैगनी होता है। फल का कैलिक्स हरा होता है। इस किस्म की औसत उपज 500–600 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

काशी नन्दिनी सब्जी मटर की यह किस्म कम अवधि (80–100 दिन), अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की फली की लम्बाई 7–8 सेमी., रंग हल्का हरा, फली में दानों की संख्या 7–8 होती है। इस किस्म की प्रति हेक्टेयर उपज 120–140 कु. होती है। इस किस्म की कटाई के बाद पिछेती गेहूँ की बुवाई की जाती है। फ्यूजेरियम विल्ट के प्रति सहनशील होती है।

काशी उदय सब्जी मटर की यह किस्म कम अवधि (80–100 दिन), अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की फली की लम्बाई 7–8 सेमी., रंग हल्का हरा, फली में दानों की संख्या 7–8, दाने मीठे होते हैं। इस किस्म की उपज प्रति हेक्टेयर 120–140 कु. होती है। इस किस्म की कटाई के बाद भी पिछेती गेहूँ की बुवाई की जाती है।

काशी हरित कुम्हड़ा के इस किस्म के फल गोल, चपटे, फल का रंग हरा जिस पर अनियमित भूरी धारियां होती है फल का औसत वजन 1.0–1.5 किग्रा. एवं औसत उपज प्रति हेक्टेयर 250–300 कुन्तल होती है।

काशी गंगा लौकी की यह किस्म अधिक उपज देने वाली किस्म है। इस किस्म के फल हल्के हरे रंग के 40–45 सेमी. लम्बी औसत वजन 1.0–1.5 किग्रा. एवं उपज प्रति हेक्टेयर 300–350 कुन्तल होती है।

सस्य तकनीकी

सब्जियों की बुवाई/रोपण की लाइनें पूरब–पश्चिम करने से 20–25 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। बुवाई/रोपण के पूर्व वर्मीकम्पोस्ट/कम्पोस्ट के साथ *ट्राइकोडर्मा* 5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रयोग करने से मृदा जनित बीमारियाँ नही आती है। बुवाई के पहले बीज उपचार थायोमेजाक्जाम 1.0–1.5 ग्राम प्रति 100 मिली. पानी की दर से करना चाहिए। रोपण पूर्व पौधे की जड़ों को इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत के घोल में 10 मिनट तक उपचारित करना आवश्यक है।

- खर–पतवार प्रबंधन

खेत के चारों तरफ मेढ़ बनाये जिससे वर्षा के पानी के साथ अन्य स्थानों से खर–पतवार के बीज न आ सके। उचित फसल चक्र के माध्यम से सब्जी फसलों में उगने वाले खर–पतवारों में कमी की जा सकती है। सामान्यतः मई–जून के महीने में हरी खाद के लिए ढैचा, सनई, मूंग, उडद, लोबिया आदि की बुवाई करें एवं 45 दिन बाद जुताई करके मृदा में मिला दें। हरी खाद की फसलों के सड़ने से उत्पन्न तापमान एवं रसायनिक क्रियाओं से खर–पतवार के बीज नष्ट हो जाते हैं एवं हानिकारक कीट एवं बीमारियों के संदूषक भी नष्ट हो जाते हैं। हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा का पी.एच. मान 1.0–1.5 कम हो जाता है एवं मृदा में कार्बन तत्व की मात्रा में वृद्धि होती है जिससे सब्जियों की उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ती है।

- फसल अवशेष प्रबंधन

फसल अवशेषों का मृदा में उपयोग करने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है एवं उर्वरता बनी रहती है। फसलों के अवशेषों का कई प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। शीघ्र सड़ने वाले अवशेषों की फसल कटाई के उपरान्त सीधे जुताई करके मृदा में मिला सकते है। देर से सड़ने वाले अवशेषों को नाडेप कम्पोस्टिग अथवा वर्मी कम्पोस्टिग के माध्यम से सड़ाकर खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकात है। दलहनी एवं अन्य सब्जियों के फसल अवशेष की मात्रा के बराबर गाय का गोबर मिलाकर बनायी गयी खाद में पौधों के लिए आवश्यक मुख्य पोषक तत्व संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं।

- जैव उर्वरकों का प्रयोग

जैव उर्वरक एक प्रकार के जीवाणु सम्वर्धहोते हैं जिसमें वातावरण की नत्रजन के एकत्रीकरण/मृदा में मौजूद फास्फोरस/पोटाश/गंधक/लोहा आदि पोषक तत्वों को घुलनशील रूप में परिवर्तित करने का गुण होता है। नत्रजन स्थिरीकारक जैव उर्वरकों में दालवर्गीय सजियों में राइजोवियम एवं अन्य सब्जियों में एजेटोबैक्टर एवं एजोस्पीरिलम नत्रजन एकत्रीकरण का कार्य करते हैं। फास्फोरस विलायक जीवाणु (पी.एस.बी) एवं फास्फेट मोबीलाइजिंग कवक (वैम) फास्फोरस उपलब्धता बढ़ाने में बहुत प्रभावी है। जैव उर्वरक

फसल अवशेष को सड़ाने, रसायनिक कीटनाशियों के हानिकारक प्रभाव को कम करने, मृदाजनित बीमारियों को कम करने, पोषक तत्वों के चक्र को पूरा करनेएवं जैव सक्रिय यौगिक जैसे–विटामिन, हार्मोन एवं एन्जाइम पैदा कर पौधों की वृद्धि करने में सहायता करते हैं।

- जल प्रबंधन

सब्जियाँ में अधिक एवं कम जल के प्रति बहुत संवदनशील होती हैं, इसलिये वर्षा के मौसम में जल निकास की उचित व्यवस्था करना आवश्यक है एवं ऐसे क्षेत्र जहाँ जल की उपलब्धता कम है या प्रक्षेत्र समतल नही है वहाँ पर क्रमशः बूंद–बूंद सिंचाई एवं स्प्रिकलर सिंचाई के उपयोग से किसान अपना उत्पादन 15–20 प्रतिशत बढ़ा सकते है तथा 30–40 प्रतिशत तक जल की बचत कर सकते हैं।

पौध संरक्षण

- एकीकृत कीट प्रबंधन

सब्जियों में मुख्य रूप से रस चूसने वाले, पत्ती खाने वाले, पर्ण सुरंगक एवं तना व फल में छिद्र करने वाले कीटों का संक्रमण होता है। चूसने वाले कीटों में मुख्य रूप से सफेद मक्खी, हरा फुदका, थ्रिप्स, माहूँ कीट आते हैं। सफेद मक्खी का मुख्य रूप से टमाटर में हरा फुदका, भिण्डी एवं लोबिया में थ्रिप्स, मिर्च एवं माहूं का गोभीवर्गीय सब्जियों में होता है। सफेद मक्खी कीट विषाणु से होने वाली बीमारियों जैसे टमाटर पर्ण कुंचन, भिण्डी में पीत शिरा मोजैक फैलने में भी सहायक होती है। चूसने वाले कीटों में नियंत्रण के लिए बीज का उपचार थायोमेथाक्जाम, सीड ड्रेसिंग पाउडर 1.5 ग्राम प्रति 100 मिली. लीटर पानी की दर से बीज पर छिड़काव कर बीज में मिलने के बाद बुवाई करने से 30–40 दिन तक चूसने वाली कीट का संक्रमण नही होता है। प्रतिरोपित की जाने वाली फसलों की पौधों की जड़ को इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत के घोल में 10 मिनट तक उपचारित करने के बाद रोपण करने से 30 दिन तक चूसने वाली कीटों का संक्रमण नही होता है। फसलों को चूसने वाले कीटों से बचाने के लिये 0.3 प्रतिशत नीम तेल एवं 0.05 प्रतिशत स्टीकर मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। खेत के चारों तरफ मक्का, ज्वार, बाजरा लगाना चाहिए। आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत या डाईमेथोएट 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। पर्ण सुरंगक कीट अधिकांश सब्जियों को नुकसान पहुँचाते हैं पत्तियों में सुरंग बनाकर क्लोरोफिल को खा जाता है जिससे पत्तियाँ मुरझाकर सूख जाती है। इससे बचाव के लिए नत्रजन की संस्तुत मात्रा से अधिक प्रयोग न करें। सामान्यतः 4 प्रतिशत नीम गिरी चूर्ण एवं 0.05 प्रतिशत स्टीकर मिलाकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत या डाइक्लोरोवास 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें। तना एवं फल में छेद करने वाले कीट मुख्य रूप से बैंगन एवं भिण्डी की फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। बैंगन में इस कीट के नियंत्रण के लिए प्रति रोपण के पहले पौधों की जड़ों को क्लोरएन्ट्रानिलीप्रोल 0.05 प्रतिशत के घोल में 3 घण्टे तक उपचारित करने के बाद प्रति रोपण करना चाहिए। फेरोमोन ट्रैप 100 प्रति हेक्टेयर रोपण के 25, 30 दिन प्रयोग करें, कीट से संक्रमित शाखाओं एवं क्षतिग्रस्त फलों की कटाई कर मिट्टी में दवा दे। आवश्यकतानुसार साइहेलोथ्रीन 0.13 प्रतिशत या इण्डोक्साकार्ब 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।भिण्डी में इस कीट से बचाव के लिए ग्रसित तने एवं फूलों को काटकर मिट्टी में दबा दें। फूल खिलने के बाद 10 के अंतराल पर नीम गिरी सत् 4 प्रतिशत का छिड़काव करें। फूल लगते समय *ट्राइकोग्रामा* परजीवित 50,000 अण्डा प्रति हेक्टेयर खेत में 3–4 बार छोड़ने से फल बेधक कीट का प्रकोप कम हो जाता है। आवश्यकतानुसार इमामेक्टिन बेजोंएट 0.05 प्रतिशत या लैम्डासाइलोहेलोथ्रीन 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।

सब्जियों में सूत्रकृमि का प्रकोप पौधों के जड़ों में बनने वाली ग्रन्थियों पोषक तत्व के अवशोषण में मुख्य रूप से बंधक होती है जिससे 40–70 प्रतिशत तक क्षति होती है। उचित प्रबंधन के लिये कृषिगत पद्धतियों में नीम की खली के साथ सड़ी गोबर की खाद एवं जैव नियंत्रक *ट्राइकोडर्मा विरडी* खेत में 30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर, *स्यूडोमोनास फ्लुओरिसेन्स* एवं *परपुरिओसीलियम लिलासिनस* के मिश्रण से भिण्डी में बीजोपचार (10 ग्राम प्रति किग्रा.) का प्रयोग करना चाहिए।

- **एकीकृत रोग प्रबंधन**

टमाटर में पिछेती एवं अगेती झुलसा, बैंगन में फोमोप्सिस ब्लाइट, मिर्च में एन्थ्रेक्नोज, भिण्डी एवं लोबिया में सर्कोस्पोरा लीफ स्पाट, कद्दूवर्गीय सब्जियों में डाउनी मिल्ड्यू, मटर में पाउडरी मिल्ड्यू एवं फ्राशबीन में स्क्लोरोशिया प्रमुख है।

टमाटर में पिछेती झुलसा रोगप्रबंधन के लिए हरी खाद का प्रयोग करें एवं रोपण के पहले खेत में ट्राइकोडर्मा 5 किग्रा. प्रति हे. का प्रयोग करें। लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब 0.25 का छिड़काव करें। खेत में जल निकास की अच्छी व्यवस्था करें। टमाटर में अगेती झुलसा रोग प्रबंधन के लिए बीज को बुवाई के पहले 2.5 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किग्रा. से उपचारित करें। लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब 0.25 प्रतिशत एवं काफर आक्सीक्लोराइड 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें। जमीन पर गिरी संक्रमित पत्तियों को एकत्र कर जला दें। बैंगन में फोमोप्सिस ब्लाइट के नियंत्रण के लिए बुवाई के पहले बीज को कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करें। प्रतिरोपण के पहले पौधे की जड़ों को कार्बेन्डाजिम के 0.1 प्रतिशत के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करें। फसल चक्र में धान्य वाली फसलें उगायें। संक्रमित फसल अवशेष को एकत्र कर जला दें। मिर्च में एन्थ्रेक्नोज रोग के नियंत्रण के लिए संक्रमित टहनी को काटकर जला दें एवं शाम के समय कापर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें। बीज बुवाई के पहले बीज का उपचार कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. की दर से करें। आवश्यकतानुसार क्लोरोथैलोनील 0.15 प्रतिशत तथा कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत का बारी–बारी छिड़काव करें। भिण्डी एवं लोबिया में सर्कोस्पोरा लीफ स्पाट के नियंत्रण के लिए फसल चक्र अपनायें तथा फसल अवशेष को नष्ट करें। आवश्यकतानुसार हेक्साकोनाजोल या ट्राइएडिमिफान 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें। कद्दूवर्गीय सब्जियों में मृदुरोमिल आसिता के प्रबंधन के लिए बुवाई से पहले बीज को मेटालेक्सिल 2 ग्राम प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करें। आवश्यकतानुसार मैन्कोजेब 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें। बीच–बीच में मैन्कोजेब + साइमोक्सोनिल 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें।सब्जी मटर में चूर्णिल आसिता से बचाव के लिए मटर की कम अवधि वाली किस्मों की बुवाई 25 अक्टूबर से 15 नवम्बर के मध्य करें। अधिक अवधि वाली प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें। आवश्यकतानुसार घुलनशील सल्फर 0.2 प्रतिशत 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

बे–मौसम सब्जियों के उत्पादन से सब्जियों का बाजार मूल्य अधिक मिलता है जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है। जाड़े के मौसम में पालीहाउस/पालीटनेल, गर्मी के मौसम में एग्रोनेट शेड हाउस, वर्षा के मौसम में कीटों/रोगों से बचाव के लिये नेट हाउस का प्रयोग करके किसान बे–मौसम गुणवत्तायुक्त सब्जियाँ उत्पादित कर अपनी आय बढ़ा सकते हैं जिसके लिये सरकार अनुदान दे रही हैं। भारत सरकार कृषकों की आय बढ़ाने के लिये अनेकों महत्वाकांक्षी योजनाओं जैसे–प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, परम्परागत कृषि योजना, राष्ट्रीय कृषि बाजार, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, राष्ट्रीय कृषि बाजार योजना आदि संचालित कर रही है। इसके अलावा सरकार द्वारा सीड हब परियोजना के अन्तर्गत किसान बीज उत्पादन

को उद्यम के रूप में अपना सकते है जिससे ग्रामीण रोजगार एवं आय में वृद्धि होगी। इस दिशा में संस्थान सब्जी बीज पोर्टल बनाकर किसानों के साथ जुड़ गया है।

देश में कुपोषण की समस्या को दूर करने में एवं प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत करने में सब्जियों का बहुत योगदान हैं इसको ध्यान में रखकर शहरों एवं गाँवों में घर के आस–पास खाली जगह में या गमलों में सब्जियों की खेती करके वर्ष भर हरी सब्जी प्राप्त कर सकते हैं जिससे आय में बचत होती है तथा कुपोषण की समस्या में कमी आती है। संस्थान इसको ध्यान में रखकर 10 सब्जियों के गृहवाटिका पैकेट सभी उत्सुक लोगों को उपलब्ध कराया जा रहा है। सब्जी ज्ञान एप्प के माध्यम से किसान उन्नतशील किस्मों, सब्जी उत्पादन, पौध संरक्षण एवं प्रसंस्करण की आधुनिकतम तकनीकों की जानकारी संस्थान की वेबसाइट्स से प्राप्त सकते हैं।

<u>प्राकृतिक खेतीसे किसानों की आय बढ़ेगी</u>

डा0 आर.एस. सेंगर

सरदार वल्लभभाईपटेलकृषि एवं प्रौद्योगिकविष्वविद्यालय, मेरठ– 250110

इस बार के बजट 2022-23 में सरकार द्वारा आत्मनिर्भरता को बढ़ाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं देश के लघु एवं सीमांत किसानों की समस्याओं को देखते हुए सरकार ने गंगा किनारे 5 किलोमीटर दायरे में रसायन मुक्त खेती अर्थात प्राकृतिक खेती का कोरिडोर विकसित करने का एक सराहनीय कदम उठाया है इससे गंगा किनारे 5 किलोमीटर में आने वाले गांव की आय में वृद्धि हो सकेगी एवं गंगा के आसपास के क्षेत्रों में सफाई भी होगी और रासायनिक मुक्ति खेती करने से किसानों को उचित कीमत भी मिलेगी साथ ही साथ 2025 तक गांव-गांव तक इंटरनेट पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है जिससे डिजिटल इंडिया को बढ़ावा मिलेगा और देश की अर्थव्यवस्था भी अच्छी हो सकेगी देश में कृषि को नया आयाम देने तथा श्रम की बचत हो सके इस बात को ध्यान में रखते हुए डॉन शक्ति के लिए स्टार्टअप को बढ़ावा दिया जाएगा यदि ड्रोन की उपयोगिता कृषि के विकास में की जाएगी तो निश्चित रूप से आने वाले वर्षों में रसायनिक मुक्त खेती को करने मैं एक अच्छी भूमिका अदा हो सकेगी इस बार के बजट से यह साफ दिखाई देता है की प्राकृतिक खेती निश्चित रूप से आने वाले वर्षों में किसानों के लिए एक वरदान साबित होगी|

प्राकृतिक खेती छोटे और सीमांत किसानों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है प्राकृतिक खेती में उत्पादन लागत बहुत कम आती है जब देश की अर्थव्यवस्था कोरोना विषाणू के चलते पूरी तरह शिथिल पड़ चुकी थी तब भारत अपने पारंपरिक जैविक कृषि के कारण उत्पादन के पिछले रिकार्डों को तोड़ता दिखाई दिया देश में वर्ष 2019 और 20 के दौरान प्रमुख फसलों का अनुमानित उत्पादन रिकॉर्ड स्तर पर रहा था जिसमें चावल का उत्पादन 11.5 करोड टन गेहूं 10.5 करो टन दाल 2.3 करोड़ टन और तिलहन 3.15 करो टर्न हुआ निश्चित ही इस रिकॉर्ड स्तर का उत्पादन देश का रासायनिक खेती से पितर प्राकृतिक खेती की ओर कदम बढ़ाने का ही नतीजा था यह आंकड़े वर्ष 2019-20 के थे लेकिन अगर 2020 और 21 के आंकड़े देखें तो पता चलेगा कि हमारी उत्पादन क्षमता लगातार बढ़ रही है|

प्राकृतिक खेती का मतलब बिना केमिकल के केवल प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए खेती करना है दूसरे शब्दों में कहा जाए तो किसान जो भी फसल उगाई उसमें फर्टिलाइजर कीटनाशकों का इस्तेमाल ना करें इसमें रासायनिक खाद के स्थान पर वह खुद जानवरों के सड़े हुए गोबर से तैयार की हुई खाद का उपयोग अपने खेतों में करें यह खाद गाय और भैंस के गोबर गोमूत्र चने के बेसन गुड मिट्टी तथा पानी से बनता है इसमें फसल में रोग नहीं लगता और पैदावार भी बड़े आसानी से बढ़ती है इसका ज्वलंत उदाहरण हम सभी ने लॉकडाउन की अवधि में देखा था केवल हमारी मानसिकता आज ऐसी बनी हुई है कि हम कम समय में अधिक उत्पादन करना चाहते हैं फिर वह चाय उत्पादित सामान पोषण युक्त हो अथवा ना हो लिहाजा ऐसी मानसिकता का परिणाम भूमि को बंजर करना और तमाम प्रकार के विषैले रसायनों को अपने जीवन में जगह देने वाली होती है रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने से उत्पादन बढ़ता जरूर है लेकिन एक समय के बाद घूमते धीरे बंजर होने लगती है और उत्पादकता घटना शुरू हो जाता है जिस को रोकने की आवश्यकता है|

एक रिपोर्ट के अनुसार आज देश की आबादी 1971 में 66 करोड़ से बढ़कर 1 से 39 करोड के पार हो गई है लेकिन अनाज का उत्पादन 1 किलो प्रति व्यक्ति से बढ़कर 1.74 किलो तक ही हो पाया हमारा मानना है कि रसायन युक्त कृषि हमारे अनुकूल नहीं है इससे जमीन की उपजाऊ क्षमता तेजी से घटती है बेशक हम खेती में कम रसायन का उपयोग कर सकते हैं तथा किसी को जीरो बजट खेती का प्रारूप प्रदान कर सकते हैं अर्थात प्राकृतिक खेती आसानी से कर सकते हैं हरित क्रांति से उत्पादन एक निश्चित समय तक बड़ा जरूर था लेकिन इसने कैंसर इट्स डायबिटीज और दिल का दौरा के अलावा पेट से संबंधित कई बीमारियां को बढ़ा दिया है लिहाजा रासायनिक किसी को विफल होता देख तथा उसके हानि का अनुमान लगाकर भारत ने आत्म निर्भरता की राह पर चलने का निर्णय किया है

प्राकृतिक कृषि पद्धति को स्थानीय रूप से विद्यमान चार मुख्य तत्वों की सहायता से करने की प्रणाली विकसित की गई है पहला गोमूत्र और गोबर में रखे बीजों का उपयोग दूसरा मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या बढ़ाने के लिए गोबर तीसरा गोमूत्र एवं अन्य सामग्री का उपयोग चौथा मृदा की नमी और हिम्मत को बनाए रखने के लिए उसे एवं ऑर्गेनिक पदार्थों का प्रयोग तथा मृदा को अनुकूल रखने के लिए उसमें पर्याप्त वायु संचरण इन तत्वों के साथ आवश्यकता अनुसार प्राकृतिक कीट प्रबंधन पद्धति का भी उपयोग किया जाता है भारत में राजधानी कृषि

के विकल्प के रूप में होम्यो फॉर वैदिक फार्मिंग नेचूको फार्मिंग अग्निहोत्रा फार्मिंग अमृतवाणी फार्मिंग और जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग प्रसिद्ध हुए हैं मेरा मानना है कि मृदा में प्राकृतिक रूप से पौधों के लिए सभी पोषक तत्व होते हैं हमें केवल सूक्ष्मजीवों की अंतर्म अध्यक्षता पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है यदि सूत्रों की संख्या जमीन में बढ़ती है तो वह प्राकृतिक रूप से पौधों को पोषण उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभाते हैं

आज भारत के केवल कुछ राज्यों में ही प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसका प्रणाम कोरोना विषाणु जनित आपदा के समय देश की अर्थव्यवस्था को डूबने से बचाने के लिए प्राकृतिक खेती मजबूत नाव का सहारा बन कर उभरी थी भारत का सिक्किम सबसे पहला ऑर्गेनिक राज्य होने का दर्जा प्राप्त किया है आंध्र प्रदेश में भी शुरू की गई कृषि प्रणाली अत्यंत व्यवस्थित है यह किसी प्रस्तुत किए सिद्धांतों पर आधारित है आंध्र प्रदेश ने इसे डेल्टा स्वस्थ एवं पहाड़ी जंगली क्षेत्रों में भी अजमा कर प्रमाण प्रस्तुत कर चुका है कि रासायनिक कृषि की तुलना में नेचुरल फार्मिंग से काफी ज्यादा उपज प्राप्त की जा सकती है इसमें इनपुट लागत नहीं के बराबर तथा खाद और कीटनाशकों की भी जरूरत नहीं पड़ती नेचुरल फार्मिंग का यह मॉडल अकाल बाढ़ और करो ना जैसी महामारी के दौरान अनुकूल साबित हुआ है यह किसी प्रणाली जलवायु परिवर्तन की वर्तमान स्थितियों में सर्वथा उपयुक्त है इस प्रणाली में विभिन्न प्रकार की फसल लगाई जा सकती है इससे पोषण और आए दोनों में भी लाभ होता है इन सबके साथ बिजली और पानी की खपत कम होती है किसानों का स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहता है स्थानीय प्रस्तुत किए तंत्र और जैविक विविधता भी मजबूत होती है इको फ्रेंडली टेक्निक होने के कारण इसका लाभ ही लाभ दिखाई देता है

प्राकृतिक खेती देश के कई हिस्सों में कारगर सिद्ध हो रही है प्राकृतिक कृषि प्रणाली को देश के कई किसी प्रसिद्ध की क्षेत्रों में लागू भी किया जा रहा है इसके लिए किसानों में ही नवाचार की प्रवृत्ति विकसित करने के लिए उनको प्रशिक्षण और सुविधाएं सरकार के द्वारा मुहैया कराई जा रही है उसी का नतीजा है कि उत्तर प्रदेश में भी किसान अब प्राकृतिक खेती और नेचुरल खेती की तरफ काफी आगे बढ़ रहे हैं आंध्र प्रदेश के 700000 किसानों को रासायनिक खाद और कीटनाशकों पर आधारित मौजूदा खेती के तरीके से हटा कर आज नेचुरल फार्मिंग करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है एन एस एस ओ की ओर से जारी एक आंकड़े के मुताबिक 70% किसान खेती में अपनी कमाई से अधिक खर्च करते हैं यही वजह है कि आधे से अधिक किसान

कर्ज में डूबे हुए हैं आंध्र प्रदेश और तेलंगाना जैसे राज्यों में 90% से अधिक किसान कर्ज में दबे हुए हैं जहां प्रत्येक परिवार का ऑप्शन ₹100000 का कर्ज दिखाई देता है यदि वह रासायनिक खेती को बदलकर नेचुरल फार्मिंग करते हैं तो निश्चित रूप से उनको मुनाफा होगा और कर्ज से निजात पा सकेंगे

सरकार का प्रयास है कि इसवर्ष तक किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य प्राप्त किया जाए इसको प्राप्त करने के लिए कृषि लागत घटाने और उन्हें लोन से बचाने के लिए जरूरी है कि वह नेचुरल फार्मिंग की ओर आगे बढ़े साथ-साथ सह फसली खेती और बहू फसली खेती करें

राज्य सरकार का लक्ष्य है कि वर्ष 2024 तक प्रदेश की 80लाखहेक्टेयर जमीन पर खेती करने वाले 60 लाख किसानों को पूरी तरह नेचुरल फार्मिंग के अंतर्गत शामिल किया जाए आंध्र प्रदेश का रायलसीमा क्षेत्र सूखा संकट से जूझता हुआ क्षेत्र है इस नेचुरल फार्मिंग से वहां भी अनेक सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं लेकिन अभी भी भारत में नेशनल फार्मिंग सही तरीके से लागू नहीं हो सकी है इसके लिए प्रत्येक मंडल में से कम से कम 1 पंचायत को इस नई विधि में स्थानांतरित करने की दिशा में काम किया जाना चाहिए जिससे इस कार्यक्रम का प्रचार प्रसार राज्य की प्रत्येक पंचायत में सुचारू रूप से वर्ष 2024 तक पूर्ण कवरेज के साथ इसे लागू किया जा सके लेकिन इस कार्यक्रम के संचालन में लगभग 16500 करोड़ की लागत आने की संभावना है इसके लिए किसानों और मजदूरों को प्रशिक्षित किए जाने की भी आवश्यकता है जहां एक और आंध्रप्रदेश नेचुरल फार्मिंग का पौधा बनता जा रहा है वहीं दूसरी ओर कर्नाटक हिमाचल प्रदेश और केरल ने भी इस दिशा में कदम बढ़ा दिए हैं लेकिन बाकी राज इस मामले में अभी भी काफी पिछड़े हुए हैं ऐसी खेती को बढ़ावा देने के पीछे सरकार का मकसद यह है कि किसानों को किसी भी फसल को उगाने के लिए किसी तरह का कर्ज ना लेना पड़े नेचुरल फार्मिंग से किसान कर्ज मुक्त होगा और आत्मनिर्भर भारत का सपना भी साकार होगा साथ ही देश की लोकल से ग्लोबल की अवधारणा साकार होने में मदद मिलेगी किसानों के जीवन स्तर में सुधार होगा और सरकार की किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य आसानी से पूरा हो सकेगा

देश में किसानों को रसायन मुक्त प्राकृतिक खेती को बढ़ाने के लिए सपोर्ट किया जाएगा ऑर्गेनिक खेती को बढ़ावा दिया जाएगा अनाजों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए विशेष अभियान चलाया जाएगा किसानों को डिस्टर्ब सर्विस देने के भी योजना है साल 2023 को मोटा अनाज वर्ष

मनाने की घोषणा की गई है किसानों को डिजिटल सर्विस दी जाएगी ऑर्गेनिक खेती पर सरकार का जोर रहेगा पांच नदियों को आपस में जोड़ा जाएगा प्राकृतिक खेती और नेचुरल खेती के लिए गंगा के किनारे इस से 5 किलोमीटर तक के गांव में नेचुरल फार्मिंग के लिए योजनाएं चलाई जाएंगी किसानों को सुविधा मुहैया कराई जाएगी तथा उन को आर्थिक रूप से मजबूती दी जाएगी|

कृषि क्षेत्र में विविधीकरण अपनाने से जहां जरूरत आधारित खेती को बढ़ावा मिलेगा वही प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करने में भी मदद मिलेगी वर्ष 2015-16 से 2020-21 के दौरान तिलहनी फसलों को प्रोत्साहन मिला है सरकारी तौर पर इन फसलों के एमएसपी में जबरदस्त वृद्धि की गई है इसकी वजह से ट्रेनिंग फसलों के उत्पादन में 43% की वृद्धि दर्ज की गई है सर्वेक्षण रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया है कि आम बजट मैं प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन के लिए भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति प्रोग्राम को प्राथमिकता दी जाएगी|

नेचुरल फार्मिंग से धारणीय विकास के अनेक लक्ष्य जैसे मृदा की गुणवत्ता में सुधार जैव विविधता जीविका जल रंगों में कमी स्वास्थ्य नारी सशक्तिकरण एवं पोषण आदि को प्राप्त करना आसान हो सकेगा कृषकों की आत्महत्या के मामले में आंध्र प्रदेश प्रथम पांच राज्यों में से एक है अतः यदि हम इस कृषि प्रणाली के माध्यम से किसानों के जीवन की रक्षा कर सकेंगे तो इससे बड़ी उपलब्धि कोई नहीं हो सकती इसलिए अब देश को केवल कुछ राज्यों तक नेचुरल फार्मिंग में सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि इस नेचुरल फार्मिंग का प्रसाद समूचे देश में धीरे-धीरे होना चाहिए आज जब हम आत्मनिर्भर ताकि बात कर रहे हैं तो हमें याद रखना चाहिए कि नेचुरल फार्मिंग और प्राकृतिक खेती की उपेक्षा करके आत्मनिर्भरता उरुति इमारत को खड़ी कर पाना बहुत मुश्किल है इसके लिए जरूरी है कि हमें एक नेचुरल फार्मिंग अर्थात प्राकृतिक खेती को बढ़ाने के लिए सामाजिक प्रांत की दरकार है और सामाजिक क्रांति को बढ़ाने के लिए एक वैचारिक क्रांति लानी होगी तभी हम देश में प्राकृतिक खेती को किसानों के बीच आसानी से स्थापित कर सकेंगे|

आत्मनिर्भर भारत के लिए टिशु कल्चर केले की खेती

डॉ आर एस सेंगर एवं वर्षा रानी

कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि0 वि0, मेरठ, उ0. प्र0

केला पूरी दुनिया में सबसे लोकप्रिय ताजा फल है और इसका नाम अरबी शब्द 'केला' से आया है, जिसका अर्थ है उंगली। केले का वैज्ञानिक नाम *मूसा एक्यूमिनता* और *मूसा बाल्बिसियाना* है। लेकिन केले के पुराने वैज्ञानिक नाम *मुसा सैपिएंटम* और *मूसा पाराडिसिअका* हैं। केले कार्बोहाइड्रेट और पोटेशियम का समृद्ध स्रोत हैं। इसकी उच्च ऊर्जा क्षमता के कारण एथलीटों की यह पहली पसंद है। यह व्यापार और आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है। केला फल पोटेशियम में भी समृद्ध है और फाइबर का एक बड़ा स्रोत भी है। हाल के वर्षों में, रसायनों के अंधाधुंध उपयोग के प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए, दुनिया भर में जैविक केले के उत्पादन की नई प्रवृत्ति को अपनाया गया है। इसके लिए एक नया नाम, यानी ''ग्रीन फूड्स'' गढ़ा गया है। इतिहास में पहली बार 600 ईसा पूर्व के बौद्ध ग्रंथों ने केले को अत्यधिक पोषक भोजन के रूप में उल्लेख किया है। केला दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसलों में से एक है। भारत में, केले की फसल का सकल घरेलू उत्पाद जीडीपी में 2.8 प्रतिशत है। यह किसानों के निर्वाह के लिए एक महत्वपूर्ण फसल है, और भोजन या आय के लिए वर्षभर सुरक्षा सुनिश्चित करता है। केला (मूसा प्रजाति) कुछ शुरुआती फसल वाले पौधे हैं जिन्हें मानव द्वारा अपनाया गया है।

केले का सेवन पके फल के रूप में किया जाता है, जबकि केले जो पूरी तरह से पके होने पर भी स्टार्चयुक्त रहते हैं, उन्हें स्वाद के लिए पकाने की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक स्थिति के बावजूद, केले को 'गरीब आदमी का सेब' कहा जाता है। उत्पादन के सकल मूल्य के मामले में, चावल, गेहूं और मक्का के बाद केला विश्व स्तर पर चौथे स्थान पर है। यह लाखों लोगों के लिए एक प्रमुख प्रधान खाद्य फसल है और साथ ही स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से आय प्रदान करता है। स्टार्ची प्रधान खाद्य फसलों में, केला कुल उत्पादन के मामले में तीसरे स्थान पर है। कम कीमत और उच्च पोषक मूल्य के कारण केला बहुत लोकप्रिय फल है। यह ताजा और पका हुआ दोनों रूप में पके और कच्चे फल दोनों के रूप में सेवन किया जाता है। केला कार्बोहाइड्रेट का एक समृद्ध स्रोत है और विटामिन विशेष रूप से विटामिन बी से समृद्ध है। यह पोटेशियम, फास्फोरस, कैल्शियम और मैग्नीशियम का भी एक अच्छा स्रोत है। फल वसा और कोलेस्ट्रॉल से मुक्त, पचाने में आसान है। केले के पाउडर का इस्तेमाल पहले बच्चे के भोजन के रूप में किया जाता है। यह नियमित रूप से उपयोग किए जाने पर हृदय रोगों के जोखिम को कम करने में मदद करता है और उच्च रक्तचाप, गठिया, अल्सर, आंत्रशोथ और गुर्दे की बीमारियों से पीड़ित रोगियों के लिए अनुशंसित है। फलों से चिप्स, केला प्यूरी, जैम, जेली, जूस, वाइन और हलवा जैसे प्रोसेस्ड प्रोडक्ट बनाए जा सकते हैं। कोमल तना, जो पुष्पक्रम को सहन करता है, कटे हुए स्यूडोस्टेम के पत्ती को हटाकर सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। केले का उत्पादन 135 देशों और क्षेत्रों में उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में किया जाता है। 2017–18 के दौरान, केले का विश्व स्तर 60.2 लाख हेक्टेयर था, जबकि विश्व उत्पादन 1253.4 लाख टन और उत्पादकता 20.8 टन / हेक्टेयर (FAOTAT, 2018) थी। भारत दुनिया में सबसे बड़ा केला उत्पादक है। 2017–18 के दौरान, भारत ने 8.6 लाख हेक्टेयर में से लगभग 304.7 लाख टन केले का उत्पादन किया।

केले के पौधे एक भूमिगत तने से अलैंगिक रूप से प्रजनन करते हैं। और एक वर्ष से भी कम समय में फसल तैयार किया जा सकता है। केला एक बारहमासी फसल है जो जल्दी उगती है और पूरे

साल इसे काटा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली केले की किस्म ग्रैंड नाइन (G-9) है। उत्तर प्रदेश के प्रमुख क्षेत्रों में जहां केले की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है, वे हैं सिद्धार्थनगर, बस्ती, संत कबीरनगर, महाराजगंज, कुशीनगर, फैजाबाद, बाराबंकी, सुल्तानपुर, लखनऊ, सीतापुर, कौशाम्बी, इलाहाबाद। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, गन्ना किसान भी केले की खेती के प्रति गहरी रुचि ले रहे हैं। केले की खेती को बढ़ावा देने और लोकप्रिय बनाने के लिए, "**टिशू कल्चर तकनीक के माध्यम से रोग-मुक्त केला पौधों का उत्पादन व नर्सरी की स्थापना और किसानों के बीच कम लागत के पौधों के वितरण**" नामक एक शोध परियोजना वर्तमान में कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश में डॉ0 आर.एस. सेंगर की देखरेख में चल रही है। यह अनुसंधान परियोजना डॉ0 रेणु स्वरूप, सचिव, डीबीटी, नई दिल्ली और डॉ0 शाहज यू0 अहमद, वैज्ञानिक "ई", डीबीटी, नई दिल्ली की वित्तीय सहायता और सहायता के साथ चल रही है। इस अनुसंधान परियोजना के कार्यान्वयन से, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई किसान जागरूक हुए हैं और पत्रिकाओं और स्थानीय अखबारों में केले की खेती के बारे में पढ़कर और व्यक्तिगत बैठकों के माध्यम से या रोग-मुक्त केले के पौधों के उत्पादन पर प्रशिक्षण और प्रदर्शन के माध्यम से लाभान्वित हुए हैं। यह भी अनुभव किया जाता है कि गन्ना किसान भी केले की खेती के प्रति अपनी रुचि दिखा रहे हैं। इस अनुसंधान परियोजना की निरंतरता की मदद से, कई किसानों ने अपने खेतों में केले की खेती शुरू की है। निकट भविष्य में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अधिक से अधिक पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान आय बढ़ाने और अपनी आजीविका को बनाए रखने के लिए केले की खेती को अपनाने में सक्षम होंगे।

मृदा–

केला सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है, परन्तु व्यवसायिक रूप से खेती करने हेतु अच्छे जल निकास वाली गहरी दोमट मिट्टी जिसका पी. एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच हो, उपयुक्त रहती है। अधिक रेतीली मृदा जो पोषक तत्वों को अधिक देर तक रोकने में असमर्थ होती है एवं अधिक चिकनी मृदा जिसमें पानी की कमी के कारण दरारें पड़ जाती है, केले की खेती के लिए उपयुक्त नही होती है।

जलवायु–

केला उष्ण जलवायु का पौधा है। यह गर्म एवं आर्द्र जलवायु में भरपूर उत्पादन देते है। केले की खेती के लिए 20–35 डिग्री सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त रहता है। 500 से 2000 मिली मीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती की जा सकती है। केला को पाला एवं शुष्क तेज हवाओं से नुकसान होता है।

किस्में–

(1) ड्वार्फ कैवेन्डिस (एएए)– यह सबसे अधिक क्षेत्र में उगाई जाने वाली एक व्यवसायिक प्रजाति है। पौधे लगाने के बाद 250–260 दिनों के बाद फूल आना आरम्भ हो जाता है। फूल आने के बाद 110–115 दिनों के बाद घार काटने योग्य हो जाती है। इस प्रकार पौधे लगाने के कुल 12–13 माह बाद घार तैयार हो जाती है। फल का आकार 15–20 से.मी. लम्बा और 3.0–3.5 से.मी. मोटे पीले से हरे रंग के होते हैं। घार का भार 20–27 कि.ग्रा. तक होता है, जिसमें औसतन 130 फल होते हैं। यह प्रजाति पनामा रोग प्रतिरोधी है, परन्तु शीर्ष गुच्छा रोग के प्रति संवेदनषील होती है।

(2) रोवस्टा (एएए)–इस किस्म के पौधे मध्यम ऊंचाई के होते हैं फल 12–13 माह में पककर तैयार हो जाते हैं। फल आकार में 20–25 से.मी. लम्बे एवं 3–4 से.मी. मोटे होते हैं। घार का भार औसतन 25–30 कि.ग्रा. तक रहता है। यह प्रजाति पनामा रोग प्रतिरोधी है, एवं सिगाटोका रोग के प्रति संवेदनषील होती है।

(3) रसथली (एएबी)– इस किस्म के फल आकार में बड़े तथा पकने पर सुनहरी पीले रंग के होते हैं। घार का भार 15–18 कि.ग्रा. तक होता है। फसल 13–15 माह में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म में फल फटने की समस्या आती है।

(4) पूवन (एएबी)–यह दक्षिण एवं उततर–पूर्वी राज्यों में उगाई जाने वाली एक लोकप्रिय प्रजाति है। इसके पौधों की लम्बाई अधिक होने के कारण उन्हे सहारे की आवष्यकता नही होती है। पौधा लगाने के 12–14 माह बाद घार काटने योग्य हो जाती है। घार में मध्यम लम्बाई वाले फल सीधे ऊपर की दिषा में लगते हैं। फल पकने पर रंग में पीले तथा स्वाद में थोड़ा खट्टापन लिए हुए मीठे होते हैं। फलों की भण्ड़ारण क्षमता अच्छी होती है। इसलिए फल एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से भेजे जा सकते हैं। घार का औसत वजन 20–24 कि.ग्रा. तक होता है। यह प्रजाति पनामा रोग प्रतिरोधी है, एवं स्ट्रीक विषाणु रोग से प्रभावित होती है।

(5) नेन्द्रेन (एएबी)– इस किस्म का उपयोग मुख्य रूप से चिप्स एवं पाउड़र बनाने के लिए किया जाता है। इसे सब्जी केला भी कहा जाता है। इसके फल लम्बे, मोटी छाल वाले थोड़े से मुड़े हुए होते हैं। फल पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं। घार का भार 8–12 कि.ग्रा. तक होता है। प्रत्येक घार में 30–35 फल होते हैं। इसकी खेती केरल एवं तमिलनाडु के कुछ भागों में की जाती है।

(6) मॉन्थन (एएबी)– इस किस्म के पौधें ऊॅचे एवं मजबूत होते हैं। घार का भार 18–20 कि.ग्रा. होता है। प्रति घार औसतन 60–70 फल होते हैं। यह किस्म पनामा उकटा रोग से प्रभावित होती है, किन्तु पत्ती धब्बा रोग एवं सूत्रकृमि रोग के प्रति सहिष्णु होती है।

(7) ग्रेण्ड नाइन (एएए)–इस किस्म के पौधों की ऊॅचाई मध्यम तथा उत्पादकता अधिक होती है। फसल की अवधि 11–12 माह की होती है। घार का भार 25–30 कि.ग्रा. होता है। सभी फल समान लम्बाई के होते हैं।

(8) कपूराबलि (एबीबी)– इस किस्म के पौधों की वृद्धि काफी अच्छी होती है। घार का भार 25–35 कि.ग्रा. होता है। प्रति घार 10–12 हस्त एवं 200 फल लगते हैं। फलों में मिठास एवं पेक्टिन की मात्रा अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। फलों की भण्ड़ाराण क्षमता बहुत अच्छी होती है। यह किस्म पनामा मिल्ट रोग और तना छेदक कीट के प्रति संवेदनषील एवं पत्ती धब्बा रोग के प्रति सहिष्णु है। यह तमिलनाडु और केरल की एक महत्वपूर्ण किस्म है।

संकर किस्में

(1) एच.1– इस किस्म के पौधे मध्यम ऊॅचाई लिए होते हैं। घार का भार 14–16 कि.ग्रा. होता है। फल लम्बे एवं पकने पर सुनहरी पीले रंग के हो जाते हैं। फल थोड़ से अम्लीय प्रकृति के होते हैं। इस किस्म से तीन वर्ष के फसल चक्र में चार बार फसल ली जा सकती है।

(2) एच. 2– इसके पौधे मध्यम ऊॅचाई (2.13 मीटर से 2.44 मीटर) के होते हैं। फल छोटे, गसे हुए तथा गहरे हरे रंग के होते हैं। फल थोड़ा खट्टापन लिए हुए मीठी सुगन्ध वाले होते हैं।

(3) को. 1– इसके फल में विषिष्ट अम्लीय, सेब सुगंध बीरूपक्षी केले की भॉति होती है। यह किस्म अधिक ऊॅचाई वाले क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(4) एफ. एच. आर.–1 (गोल्ड फिंगर)– यह किस्म पोम समूह से सम्बन्धित है। घार का वजन 18–20 कि. ग्रा. होता है। यह किस्म सिगाटोका एवं फ्यूजेरियम बिल्ट के प्रति अवरोधी होती है।

प्रवर्धन

केला का प्रवर्धन मुख्य रूप से अंत भूस्तारी द्वारा किया जाता है। केले के कन्द से दो प्रकार के सकर निकलते हैं। तलवार सकर एवं जलीय सकर। व्यवसायिक दृष्टिकोण से तलवार सकर प्रवर्धन हेतु सबसे उपयुक्त होते हैं।तलवार सकर की पत्तियां तलवारनुमा पतली एवं ऊपर की ओर उठी रहती हैं। 0.5–1 मीटर ऊँचे तथा 3–4 माह पुराने तलवार सकर रोपण हेतु उपयुक्त होते हैं। सकर ऐसे पौधों से लेना चाहिए, जो ओजस्वी एवं परिपक्व हों और किसी प्रकार के रोग से ग्रसित न हों।

सूक्ष्म प्रर्वधन

वर्तमान समय में केला का प्रवर्धन शूट टोप कल्चर, इन विट्रो, ऊतक प्रवर्धन विधि से भी किया जा रहा है। इस विधि से तैयार पौधे मात्र वृक्ष के समान गुण धर्म एवं विषाणु रोग रहित होते हैं।

रोपण का समय

पौध रोपण का उपयुक्त समय जलवायु, प्रजाति के चयन एवं बाजार की मांग आदि कारकों पर निर्भर करता है। तमिलनाडु में ड्वार्फ कैवेन्डिष एवं नेन्द्रेन किस्मों को फरवरी से अप्रैल में जबकि पूवन एवं कपूरावली किस्मों को नवम्बर–दिसम्बर माह में रोपित किया जाता है। महाराष्ट्र में रोपण वर्ष में दो बार जून–जुलाई एवं सितम्बर–अक्टूबर में किया जाता है।

रोपण पद्वति

खेत को दो–तीन बार कल्टीवेटर चलाकर समतल कर लें। पौध रोपण के लिए 60 x 60 x 60 से.मी. आकार के गडढ़े खोदें। प्रत्येक गडढ़े में मिट्टी, रेत एवं गोबर की खाद 1:1:1 के अनुपात में भरें। सकर को गडढ़े के बीच में रोपित कर उसके चारों ओर मिट्टी को अच्छी तरह से दबाएं। पौधों को लगाने की दूरी, किस्म, भूमि की उर्वराषक्ति, एवं प्रबन्धन पर निर्भर करती है। सामान्य रूप से केले के पौधों को लगाने की दूरी किस्मों के अनुसार नीचे सारणीी में दर्षाई गई है–

तालिका–2

क्र0सं0	प्रजाति	दूरी (मीटर)	पौधों की संख्या (प्रति है0)
1.	ग्रेण्ड नाईन	1.8 x 1.8	3.086
2.	ड्वार्फ कैवेन्डिष	1.5 x 1.5	4.444
3.	रोवस्टा, नेन्द्रेन	1.8 x 1.8	3.086
4.	पूवन, मार्थन, कपूरावली	2.1 x 2.1	2.268

सघन रोपण

सघन रोपण पद्वति आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस पद्वति में खरपतवारों की वृद्वि कम होती है तथा तेज हवाओं के कुप्रभाव से भी क्षति कम होती है। बोनी या मध्यम ऊंचाई वाली किस्मों जैसे कैवेण्डिष,

बसराई तथा रोबस्टा आदि सघन रोपाई हेतु उपयुक्त होती हैं। रोबस्टा एवं ग्रेण्ड नाईन को 1.2 x 1.2 मीटर की दूरी पर रोपण कर क्रमषः 68.98 एवं 94.07 टन प्रति हैक्टेयर की उपल प्राप्त होती है।

खाद एवं उर्वरक

केला एक अधिक पोषण तत्व ग्रहण करने वाली फसल है। खाद एवं उर्वरक की मात्रा मृदा की उर्वराषक्ति, रोपण पद्वति, किस्म, उर्वरक देने की विधि एवं कृषि जलवायु दषा पर निर्भर करती है। सामान्य वृद्वि एवं विकास हेतु 100–250 ग्राम नत्रजन, 20–50 ग्राम स्फुर एवं 200–300 ग्राम पोटाष प्रति पौधा आवष्यक होता है। नत्रजन एवं पोटाष को 4–5 भागों में बांटकर देना चाहिए एवं स्फुर की सम्पूर्ण मात्रा को रोपण के समय ही देना चाहिए।

सिंचाई जल के साथ उर्वरक उपयोग

टपक पद्वति द्वारा सिंचाई के साथ जल में घुलनषील उर्वरकों का प्रयोग फर्टिगेषन कहलाता है।

जल प्रबन्धन

केला को रोपण से लेकर तुड़ाई तक 1800–2200 मिली. मीटर जल की आवष्यकता होती है। केले में मुख्यतः कूंड, थाला एवं टपक सिंचाई पद्वित द्वारा सिंचाई की जाती है। केले को ग्रीष्म ऋतु में 3–4 दिन एवं शरद ऋतु में 8–10 दिन के अन्राल पर सिंचाई की आवष्यकता होती है। ड्रिप पद्वति द्वारा सिंचाई की विधि भी कृषकों के बीच लोकप्रिय हो रही है। इस पद्वति से सिंचाई करने पर 40–50 प्रतिषत पानी की बचत होने के साथ ही प्रति इकाई क्षेत्रफल से उत्पादन भी अधिक प्राप्त होता है। ड्रिप सिंचाई पद्वति में 5 से 18.6 लीटर पानी/दिन/पौधा की दर से विभिन्न अवस्थाओं में आवष्यक होता है।

मल्च का प्रयोग

मल्च के प्रयोग से भूमि में नमी का संरक्षण होता है। साथ ही खरपतवारों की वृद्वि भी रूकती है। गुजरात कृषि विष्वविद्यालय, नवसारी में ड्रिप सिंचाई पद्वति के साथ गन्ने की खोई अथवा सूखी पत्ती 15 टन प्रति हैक्टेयर की दर से मल्च द्वारा केले के उत्पादन में 49 प्रतिषत तक की वृद्वि दर्ज की गई है तथा 30 इसके साथ ही 30 प्रतिषत पानी की बचत भी होती है। इसके अतिरिक्त पॉलिथिन सीट द्वारा मल्चिंग से भी अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

देखभाल

(1) मिट्टी चढ़ाना–पौधों पर मिट्टी चढ़ाना आवष्यक होता है, क्योंकि इसकी जड़ें उथली होती हैं। कभी–कभी कंद भूमि से बाहर आ जाते हैं तथा इस कारण उनकी वृद्वि रूक जाती हैं।

(2) अनाचष्यक सकर निकालना– केले के पौधों में पुष्प गुच्छ निकलने से पूर्व तक सकर्स को नियमित रूप से निकालते रहना चाहिए। जब 3/4 पौधों में पुष्पन हो जाए तब एक सकर को छोड़कर अन्य सब काटते रहें।

(3) सहारा देना– केले के फलों का गुच्छा भारी होने के कारण पौधे नीचे की ओर झुक जाते हैं। पौधों को गिरने से बचाने हेतु बॉस की बल्ली या दो बॉसों को आपस में बांधकर कैंची की तरह बनाकर फलों के गुच्छों को सहारा देना चाहिए।

(4) गुच्छों को ढ़ंकना– गुच्छों को सूर्य की सीणी तेज धूंप से बचाने एवं फलों का आकर्षक रंग प्राप्त करने के लिए, गुच्छों को छिद्रदार पॉलीथिन बैग अथवा सूखी पत्तियों से ढ़ंकना चाहिए।

केला पौध संरक्षण

कीट

(1) प्रकन्द छेदक कीट

ठस कीट का वैज्ञानिक नाम *कॉस्मोपोलाइट्स सॉडिडस* है। इस कीट का प्रकोप पौध लगाने के एक या दो माह बाद ही शुरू हो जाता है। प्रारम्भ में इस कीट के ग्रब तने में छिद्र करके तने को खाते हैं, जो बाद में राइजोम की तरफ स्थानान्तरित हो जाते हैं। इसके प्रकोप से पौधों की वृद्धि मंद पड़ जाती है। पौधें बीमार से प्रतीत होने लगते हैं तथा उनकी पत्तियों पर पीली धारियां उभर आती है। इस कीट के अधिक प्रकोप से पत्ती एवं धार का आकार छोटा हो जाता है।

नियन्त्रण

1. स्वस्थ सकर का ही चुनाव करें।
2. एक ही खेत में लगातार केला की फसल न लें।
3. स्कर को रोपण से पूर्व 0.1 प्रतिषत कीनॉलफॉस के घोल में डुबोएं।
4. श्रोपण के समय क्लोरोपायरीफॉस चूर्ण प्रति गड्ढ़े की दर से मिट्टी में मिलाएं।
5. प्रभावित एवं सूखी पत्तियों को काटकर जला दें।
6. कार्बोफ्यूरॉन 20 ग्राम प्रति पौधा के उपयोग से इस कीट का प्रभावी नियन्त्रण होता है।

(2) तना बेधक कीट

इस का वैज्ञानिक नाम वैज्ञानिक नाम *ओडोइपोरस लांगिकोल्लिस* है। इस कीट के प्रकोप से पत्तियां धीरे–धीरे पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं, बाद में तने पर पिन के षिर के आकार के छिद्र दिखाई पड़ने लगते हैं। तत्पष्चात् तने से गोंद जैसा लिसलिसा पदार्थ निकलना शुरू हो जाता है। ग्रब प्रारम्भ में पर्णवृन्त को खोते हैं, बाद में तने में लम्बी सुरंग बना देते हैं जो बाद में सड़कर दुर्गन्ध पैदा करती है। इस कीट के अधिक प्रकोप से पौधों पर फूल नही आते हैं अथवा फूलों की संख्या बहुत कम हो जाती है। घार का आकार बहुत छोटा रह जाता है एवं फलों का विकास अच्छी प्रकार से नही हो पाता है।

नियन्त्रण

(1) प्रभावित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

(2) प्रकन्द छेदक कीट के नियन्त्रण के समान उपाय करें।

(3) माहू

इस कीट का वैज्ञानिक नाम *पेन्टालोनिया नाइग्रोनर्वोसा* है। यह कीट पौधों से रस चूसकर पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है तथा शीर्ष गुच्छ रोग पैदा करने वाले विषाणु का प्रसार करता है।

नियन्त्रण

(1) प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

(2) प्रभावित क्षेत्रों में पेड़ी फसल न लें।

(3) डायमिथोएट 2 मिली/लीटर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

रोग

(1) सिगाटोका पत्ती धब्बा

यह रोग *सरकोस्पोरा म्यूजीकोला* नामक फफूँद से होता है। इस रोग के प्रारम्भ में पत्ती की वाह्य सतह पर पीले धब्ब बनना शुरू होकर बाद में लम्बी काली धारियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और

कालान्तर में बड़े–बड़े धब्बों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार के धब्बे पत्तियों के किनारें एवं अग्र भाग में अधिक पाए जाते हैं। संवेदनषील किस्मों में 2–3 पत्तियों को छोड़कर शेष सभी पत्तियां इस रोग से ग्रसित होकर सूख जाती है। साथ ही फलों का आकार भी छोटा रह जाता है, समय से पूर्व ही फल पक जाते हैं एवं उनकी गुणवत्ता कम हो जाती है। वतावरण में आर्द्रता अधिक होने एवं औसत तापमान के कम होने के कारण इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

(1) खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें।

(2) खेत में जल निकास का समुचित प्रबन्ध रखें।

(3) रोग एवं कीटों से प्रभावित सूखी पत्तियों को काटकर जला देना चाहिए।

(4) कवक नाषी जैसे कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर अथवा कवच 2 ग्राम प्रति लीटर या सन 0.7 मि.ली. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

(2)पर्ण धब्बा

यह रोग *ग्लोइयोस्पोरियम म्यूजी* एवं *टोट्रायकम ग्लोइयोस्पोरियोडियम* नामक विषाणु से हेती है। इस रोग में पत्तियों के सिरे पर हल्के भूरे अथवा काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं जिसके बाद में पत्तियां सूख जाती है तथा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

नियन्त्रण

कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम या कवच 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

(3) उकठा रोग

यह रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* किस्म की यूबेन्स नामक फफूँद से होता है। इस रोग के लक्षण पौध लगाने के 5–8 माह के बीच दिखाई देने लगते हैं। पुरानी पत्तियों में पीलापन पत्तियों के किनारे से प्रारम्भ होकर मध्य षिरे की ओर बढ़ता है। बाद में पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है। प्रभावित पत्तियां तने के चारों ओर गोलाई में लटक जाती हैं। तने का निचला भाग लम्बाई में फट जाता है। प्रभावित पौधे के तने एवं कन्द को लम्बवत् काटने पर वैस्क्युलर ऊतक लाल से लेकर भूरे रंग के दिखाई देने के 1 से 2 माह के भीतर पौधा मर जाते हैं।

नियन्त्रण

(1) रोपण से पूर्व कन्द को कार्बेन्डिजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में डुबोकर रोपण करें।

(2) रोपण के पांच माह बाद से कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर दो माह में एक बार टोआ दें।

(4) टिप ओवर

यह रोग *इर्विनया केरोटोवोरा* नामक जीवाणु के कारण होता है। इस रोग में राइजोम में सड़न पैदा होती है। प्रभावित तन्तु मुलायम हो जाता है। पत्तियॉ पीली पड़ जाती हैं।

नियन्त्रण

(1) स्ट्रप्टोसाइक्लिन 750 पीपीएम कॉपरआक्सीक्लोराइड 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

(5) सिगार गलन

यह रोग *वर्टीसिलियम थियोब्रामी* नामक फफूँद से होता है। यह रोग वर्षा ऋतु में अधिक प्रभावी रहती है। अपरिपक्व फलों के अग्र भाग से काली भूरी सड़न शुरू होकर धीरे–धीरे 2.0–2.5 से.मी. आगे तक

फलों को प्रभावित करता हैं। प्रभावित भाग जली हुई सिगार जैसा प्रतीत होता है, जिसके कारण इस रोग का नाम सिगार गलन रोग के नाम जाना जाता है।

नियन्त्रण

इस रोग की रोकथाम हेतु फल बनने की अवस्था पर थायोफेनेटमिथाइल या बिटरटेनाल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(6) शीर्ष विषाणु रोग

यह रोग विषाणु के द्वारा होता है। इस रोग में पत्तियों की भीतरी मध्य षिरा की द्वितियक नसों के साथ गहरी धारियॉ प्रारम्भिक लक्षण के रूप में दिखाई देते हैं। ये असामान्य लक्षण गहरे रंग की रेखाओं में 2.5 से.मी. या अधिक अनियमित रूप से पत्तियों के किनारों के साथ होते हैं। पत्तियों का आकार बहुत ही छोटा हो जाता है, जो असामान्य रूप से ऊपर की ओर गुच्छों के रूप में निकलती हैं। इस रोग से प्रभावित पत्तियों से तैयार पौधों की वृद्वि बहुत ही कम होती है जिनमें फूल नही आते हैं। इस विषाणु का फैलाव माहू के द्वारा होता है।

नियन्त्रण

(1) रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

(2) रोग वाहक कीट माहू की रोकथाम करें।

(3) माहू के नियंत्रण हेतु डायमिथोएट 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(7) केला का धारी विषाणु

यह रोग विषाणु के द्वारा होता है। इस रोग में पत्तियों पर छोटे–छोटे पीले धब्बे बनते हैं बाद में सुनहरी पीली धारियों का विकास एवं पीली धारियों वाली पत्तियॉ सड़न युक्त हो जाती है। इस रोग के चलते उत्पादन में 30–40 प्रतिषत तक का ह्रास हो सकता है। यह रोग मिली बग द्वारा फैलता है।

नियन्त्रण

(1) रोग रहित सकर का रोपण करें।

(2) मिली बग कीट का नियंत्रण करें।

नेमाटोड़

नेमाठोड द्वारा केला उत्पादन में लगभग 20 प्रतिषत का ह्रास होता है। केला मुख्यतः बुरोइंग नेमाटोड रेडोफोलस सिमिलिस, लीजन नेमाटोड, प्रैटिलेंकस काफफिर्ड़, स्पाइरल नेमाटोड, हेलाकोटीलेप्चस मल्टीसिनकट्स एवं सिस्ट नेमाटोड, हेटेरोठोरा स्पी के आक्रमण से होता है।

लक्षण

सूत्रकृमि के संक्रमण से पौधों की वृद्वि मंद पड़ जाती है। तना पतला रह जाता है। पत्तियों पर धब्बे बन जाते हैं। घार का आकार बहुत छोटा रह जाता है। सूत्रकृमि के लक्षण जडों और कंदों पर अधिक स्पष्ट होते हैं। सूत्रकृमि से प्रभावित पौधे खेत में नमी होने पर थोड़ी तेज हवा से ही गिर जाते हैं।

नियन्त्रण

(1) सूत्रकृमि प्रभावित क्षेत्रों से रोपण सामग्री का चयन न करें।

(2) गन्ना अथवा धान फसल चक्र अपनाएं।

(3) सनई, धनियॉ एवं गैंदा को अन्तः फसल के रूप में उगाएं।

(4) नीम केक 400 ग्राम प्रति पौधा रोपण के समय एवं रोपण के 4 माह बाद प्रयोग करें।

(5) रोपण के समय तथा उसके बाद 3 माह के अन्तराल से कार्बोफ्यूरान 20 ग्राम प्रति पौधा की दर से प्रयेग करें।

केला की खेती पर होने वाले आय–व्यय का आंकलित ब्यौरा प्रति हेक्टेयर (रूपये में)

क्र0 सं0	विवरण	मुख्य फसल	पेडी फसल
1.	**खेत की तैयारी–** (अ) 2 जुताई ट्रैक्टर चालित कल्टीवेटर द्वारा 5 घण्टा (350 रूपये प्रति घण्टा) (ब) खेत का समतलीकरण	1750.00 700.00	---- -----
2.	**गड्ढ़ों की खुदाई–** 4444 गड्ढ़े (60 x 60 x 60 से.मी. आकार के) 5 रूपये प्रति गड्ढ़ा	22220	-----
3.	**रोपण सामग्री–** 4500 सकर 5 रूपये प्रति सकर	22500	-----
4.	**खाद एवं उर्वरक–** 1. गोबर की खाद 40 टन 200 रूपये प्रति टन। 2. यूरिया 2451 कि.ग्रा. 5.02 रूपये प्रति कि.ग्रा.। 3. सिंगल सुपर फॉस्फेट 1388 कि.ग्रा. 3.53 रूपये प्रति कि.ग्रा.। 4. म्यूरेट ऑफ पोटाष 1851 कि.ग्रा. 4.63 रूपये प्रति कि.ग्रा.।	 8000.00 12304.00 4900.00 5870.00	 8000.00 12304.00 4900.00 8570.00
5.	**निड़ाई–गुड़ाई–** 4 बार 25 मजदूर प्रति निंदाई, 100 रूपये प्रति मजदूर की दर से	10,000.00	10,000.00
6.	**सिंचाई–** 40 सिंचाई 200 रूपये प्रति सिंचाई की	8000.00	8000.00
7.	**मिट्टी चढ़ाना–** 25 मजदूर, 100 रूपये प्रति मजदूर	2500.00	2500.00
8.	**सहारा देना–** सामग्री 15 रूपये प्रति पौधा	60,000.00	60,000.00
9.	**पौध संरक्षण–**	10,000.00	10,000.00
10.	**तुड़ाई–** 50 मजदूर, 100 रूपये प्रति मजदूर	5000.00	5000.00
11.	**केला पकाना–**	6000.00	4200.00
12.	**परिवहन व्यय–** विक्रय हेतु खेत से बाजार तक	10,000.00	7000.00
13.	**कुल व्यय–**	192444.00	140474.00
14.	कुल व्यय पर 9 प्रतिषत वार्षिक दर से ब्याल	17320.00	12643.00
15.	**कुल व्यय**	209764.00	153117.00
16.	**उत्पादन–** **मुख्य फसल–** 25 कि.ग्रा. प्रति पौधा 4000 पौधों से **पेड़ी फसल–**20 कि.ग्रा. प्रति पौधा 3500 पौधों से	1000 क्विंटल	700 क्विंटल
17.	**विक्रय–** 5000 रूपये प्रति क्विंटल	500,000.00	350,000.00
18.	**शुद्व आय–**	290236.00	196883.00
19.	**लाभ–लागत अनुपात**	2-38	2-28

तुड़ाई

फलों की तुड़ाई किस्म, बाजार एवं परिवहन के साधन आदि पर निर्भर करती है। केला की बोनी किस्में 12 से 15 माह बाद और ऊँची किस्में 15 से 18 माह बाद तोड़ने योग्य हो जाती हैं। सामान्यतः फल की धारियों के पुर्णतया गोल होने पर गुच्छों की तुड़ाई तेज धारदार हासिए से करनी चाहिए। केले दूरस्थ बाजारों में भेजने के लिए जब उनका 3/4 भाग पक जाए तो उन्हे काट लेना चाहिए।

पकाना

केला एक क्लाईमैक्टेरिक फल है, जिसे सही अवस्था में पौधे से ताड़ने के बाद पकाया जाता है। केला को पकाने के लिए इथिलिन गैस का उपयोग किया जाता है। इथिलिन गैस फलों को पकाने का एक हार्मोन है, जो फलों के अन्दर श्वसन क्रिया को बढ़ाकर उनकी परिपक्वता में तीव्रता लाता है। केले को एक बन्द कमरे में एकत्र कर 15–18 डिग्री तापक्रम पर इथिलिन (1000 पीपीएम) से 24 घण्टे तक फलों को उपचार के द्वारा पकाया जाता है।

पैकिंग

केले को आकार के अनुसार श्रेणीकरण कर उन्हे वर्ग के अनुसार अलग–अलग गत्ते के 5 प्रतिषत छिद्रों वाले छोटे–छोटे (12–13 कि.ग्रा.) डिब्बों में भरकर बाजार भेजना चाहिए।

टिशू कल्चर केले के पौधों को उगाने के फायदेः

१. वृद्धि में समानता।

२. अधिक उपज एवं उत्पाद में एकरूपता।

३. रोगाणु/संक्रामक रोग से मुक्त।

४. फूल का शीघ्र आना और फसल का शीघ्र तैयार होना।

५. अधिक पैदावार।

६. ६ से २८ महीने में तीन फसलें–

 अ. पहली फसल पौध लगाने के ११ से १२ माह के अंदर।

 ब. दूसरी फसल ८ से ६ माह के अंदर।

 स. तीसरी फसल ७ से ८ महीने के अंदर।

७. साल भर पौध का उपलब्ध होना।

यह सर्वविदित है कि केला हमारे देश की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। केला उत्पादन में भारत दुनिया में पहली रैंक हासिल करता है। परम्परागत रूप से केले का प्रचार वानस्पतिक साधनों के माध्यम से किया जाता है यानी स्टेम सकर रोग–मुक्त गुणवत्ता वाले रोपण सामग्री की उपलब्धता एक इष्टतम केले की उपज पैदा करने के लिए पहली आवश्यकता है। आजकल, टिशू कल्चर के माध्यम से केले के प्रसार का चलन बहुत अधिक है और किसान फसल की गुणवत्ता और पैदावार के कारण टिशू कल्चर के पौधों का उपयोग कर केला उगा रहे हैं। केले की मांग दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्रियों की किसान की आवश्यकताओं की पूर्ति वैज्ञानिकों की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। केले की खेती को बढ़ावा देने और लोकप्रिय बनाने के लिए, डीबीटी वित्त पोषित अनुसंधान परियोजना ''**टिशू कल्चर तकनीक के माध्यम से रोग-मुक्त केला पौधों का उत्पादन व नर्सरी की स्थापना और किसानों के बीच कम लागत के पौधों के वितरण**'' वर्तमान में कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश में डॉ0 आर. एस. सेंगर की देखरेख में चल रही है।इस शोध परियोजना के निष्कर्ष बकाया हैं और यह भी पता चला है कि इस परियोजना का कार्यान्वयन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए सहायक है। वे केले की खेती के प्रति अपनी रुचि दिखा रहे हैं और इससे लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

केला हमारे देश की एक प्रमुख फल फसल है। नकदी फसल होने के नाते, यह फसल विविधीकरण के लिए भी एक महत्वपूर्ण फसल है। केले की खेती में मुख्य बाधाएं किसानों के लिए रोग-मुक्त रोपण सामग्री की अनुपलब्धता हैं। ताकि, फसल की पैदावार को बनाए रखने के लिए केले की खेती के लिए गुणवत्ता वाले रोपण सामग्री बनाने की तत्काल आवश्यकता हो। केले की खेती को बढ़ावा देने और लोकप्रिय बनाने के लिए, डीबीटी वित्त पोषित अनुसंधान परियोजना **''टिशू कल्चर तकनीक के माध्यम से रोग-मुक्त केला पौधों का उत्पादन व नर्सरी की स्थापना और किसानों के बीच कम लागत के पौधों के वितरण''** वर्तमान में कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश में डॉ0 आर. एस. सेंगर की देखरेख में चल रही है। इस परियोजना के कार्यान्वयन को किसान की आय और फसल विविधीकरण को बढ़ाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है। हालाँकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किसान गन्ने की खेती के शौकीन हैं, लेकिन इसके साथ ही वे अपनी आजीविका हासिल करने और आय को बनाए रखने के लिए केले को एक वैकल्पिक फसल के रूप में अपना रहे हैं।

क्षेत्र स्थानांतरण के लिए केले के टिशू कल्चर से तैयार पॉलीबैग में उगाए पौधे

किसान के खेत में लहलहाती उत्तक संवर्धन तकनीक से विकसित केले की फसल

ड्रोन अन्नदाता की आये बढ़ाने में उपयोगी

डॉ. आर. ऐस. सेंगर ,कृशानु & वर्षा रानी

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एव प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय मोदीपुरम मेरठ 250110

भारत में हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त कर विगत वर्षों में महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है इस सफलता का पूरा श्रेय देश के किसानों और वैज्ञानिकों को जाता है क्योंकि वैज्ञानिकों ने जो आधुनिक तकनीकी की खोज की उन तकनीकों का समावेश अपने खेतों में किसानों के द्वारा किया गया और आज उसका परिणाम है कि हमारा देश अनाज उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया है देश के किसानों ने उन्नत किस्म के बीज मशीनों आदि का का प्रयोग करते हुए खेती में अपेक्षित बदलाव लाकर बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने तथा उत्पादन लक्ष्य को समय पर प्राप्त करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है इस उत्पादकता को और अधिक बढ़ाने श्रम को कम करने के लिए ड्रोन टेक्नोलॉजी में एक नई क्रांति ला सकती है|
समय व जलवायु परिवर्तन के साथ-साथ खेती में जहां समस्याओं का आकार व स्वरूप बदला है वही किसानों पर लागत में कमी लाते हुए अधिक उत्पादन का दबाव भी लगातार बढ़ता जा रहा है साथ ही कृषि में आय को बढ़ाने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं जिससे किसानों की आय दुगनी हो सके किसानों की आय को दोगुनी करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक खेती के नए तौर-तरीके अपनाए जा रहे हैं|
इनमें अत्याधुनिक कृषि मशीनों तथा अन्य उपकरणों का विशेष तौर पर जिक्र किया जा सकता है क्रमिक विकास के फल स्वरुप अन्य मशीनों और यंत्रों की भांति ड्रोन भी विकास के इस मुकाम पर पहुंच चुका है जहां उसे खेती के प्रयोग में भी लाया जा सकता है और कृषि के क्षेत्र में ड्रोन की उपयोगिता को देखते हुए इसकी लगातार मांग बढ़ रही है| इस बार बजट २०२२ -२३ में ड्रोन के जरिए कृषि क्षेत्र को बढ़ावा दिया जाएगा इससे फसल मूल्यांकन भूमि अभिलेखों के डिजिटलीकरण कीटनाशकों व पोषक तत्वों के छिड़काव में मदद मिलेगी

खाद्यान्न उत्पादन में निरंतर वृद्धि जारी है आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2020 और 21 के दौरान देश में खाद्यान्न उत्पादन बीते 5 वर्ष में सर्वाधिक रहा सोचने और समझने की बात है कि देश में विगत कई वर्षों से जो हमारे खेती का क्षेत्रफल है वह सीमित है लेकिन किसानों और वैज्ञानिकों की मदद से हाईटेक खेती को अपनाते हुए खाद्यान्न उत्पादन लगातार बढ़ रहा है जिसके लिए देश के किसान और वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं, 50% योगदान कृषि क्षेत्र स्वतंत्रता के पश्चात 10 वर्ष तक जीडीपी में करता रहा है वर्ष 2000 15 और 16 में यह 15.4% रह गया 54.6% आबादी वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार कृषि क्षेत्र से जुड़ी है 17.8% योगदान 2019 और 20 में देश के सकल मूल्य संवर्धन जी बी ए में कृषि संबंधित गतिविधियों का रहा है 3.6% की दर से कृषि क्षेत्र ने वर्ष 2020 और 21 में देश की अर्थव्यवस्था महामारी के कठिन समय में संभाला है 6000 किसान सम्मान निधि योजना में प्रति वर्ष 3 किस्तों में किसानों को दिए जा रहे हैं जिसका सीधा लाभ किसानों को मिला है इसके अलावा प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना 2016 में शुरू की गई है जिससे भी देश के किसान लाभान्वित हो रहे हैं

क्या है ड्रोन

ड्रोन एक ऐसा मानव रहित विमान है जिसे दूर से ही नियंत्रित तरीके से उड़ाया जा सकता है इसके खेती में प्रयोग की अपार संभावनाएं हैं| एक सामान्य ड्रोन की संरचना चार विंग यानि पंखोवाला होता है। इसलिए इसे क्वाड कॉप्टर भी कहा जाता है। असल में यह नाम इसके उड़ने के कारण इसे मिला यह बिल्कुल एक मधुमख्खी की तरह उड़ता है और एक जगह पर स्थिर भी रह सकता है। ड्रोन को कई तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे उसके उड़ने की ऊंचाई के आधार पर, उसके आकार के आधार पर, उसके वजन उठाने के क्षमता के आधार पर, उसके पहुंच क्षमता के आधार पर इत्यादि परन्तु मुख्य रूप से इसके वायु गतिकीय के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

किसानों के लिए ड्रोन लाभकारी

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में आज ड्रोन के माध्यम से खेतों में कीटनाशकों व खरपतवार नाशक रसायनों का छिड़काव करने का प्रदर्शन किया गया इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलपति डॉक्टर आरके मित्तल ने किया उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि ड्रोन किसानों के लिए काफी लाभकारी साबित होगा| कुलपति डॉक्टर आरके मित्तल ने कहा ड्रोन एक तकनीक से परिपूर्ण होने के कारण युवा पीढ़ी को अवश्य ही आकर्षित करेगा और खेती की तरफ कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करेगा इसकी भविष्य में अति आवश्यकता है इस समय बहु आयामी क्षमताओं से परिपूर्ण ड्रोन कृषि उत्पादन में प्रबंधन के लिए बहुत योगी और लाभप्रद साबित होगा ब्राउन पर भारत के साथ-साथ कई अन्य देशों में गहन अध्ययन जारी है इसको कृषि के विभिन्न कार्यों में दक्षता व सरलता से प्रयोग में लाया जा सकेगा उन्होंने कहा कि पश्चिम उत्तर प्रदेश के किसान भी इसको खरीद कर अपनी खेती किसानी में प्रयोग कर सकेंगे अब वह दिन दूर नहीं है जब ड्रोन का रिमोट किसानों के हाथ में होगा इसके लिए कृषि विश्वविद्यालय प्रयास कर रहा है और आज परिसर में इसका प्रदर्शन करके इसकी संभावनाएं और बढ़ा दी है|
कुलपति डॉक्टर मित्तल ने बताया की समय व जलवायु परिवर्तन के साथ-साथ खेती में जहां समस्याओं का आकार व स्वरूप बदला है वही किसानों पर लागत में कमी लाते हुए अधिक उत्पादन का दबाव भी बड़ा है ऐसे में किसानों की आय को दुगनी करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक खेती के नए तौर तरीके अपनाए जाने होंगे इसमें आधुनिक कृषि मशीनों तथा अन्य उपकरणों का विशेष तौर पर उपयोग करना होगा उन्होंने बताया कि ड्रोन एक बहुत ही महत्वपूर्ण मशीन है जो खेती के लिए काफी उपयोगी है|

उन्होंने कहा की जहां पर यह किसानों के स्वास्थ्य के साथ-साथ उनके समय को बचाएगा वही उनके खर्चे में भी कमी आएगी और नैनो फर्टिलाइजर आदि का समान रूप से छिड़काव अपने खेत में किसान बहुत ही कम समय में कर सकेंगे|

कृषि में ड्रोन की बढ़ सकेगी भूमिका

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपारिक हवाई वाहनों की अपेक्षा उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है ड्रोन खेतों के हालात जानने के लिए डाटा उत्तरण और उनका विश्लेषण करने ऐसे कार्यों में विभिन्न अवयवों व घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है|

प्रोफेसर आर एस सेंगर ने बताया कि इस ड्रोन की कीमत लगभग ₹600000 आती है इसके टैंक की क्षमता 10 लीटर तक की गुल को लेकर आसानी से खेत बिछड़ा सकता है 15 मिनट में लगभग 1 एकड़ क्षेत्रफल में अच्छी तरह से छिड़काव इसे छिड़काव करने पर समय की बचत के साथ-साथ लेवर की भी बचत होती है|

डॉ सेंगर ने बताया ऐसी परिस्थितियां जहां परंपरागत मशीनों का उपयोग करना चुनौतीपूर्ण है वहां पर इसका उपयोग किया जा सकता है जब किसानों के खेत गीले हो उसमें चलने में कठिनाई हो रही हो इसके अलावा गीले धान का खेत हो गन्ना हो मक्का व कपास की फसल नारियल और चाय बागान लीची के बागान आम के बागान इत्यादि में विभिन्न ऊंचाइयों पर जाकर ड्रोन की सहायता से आसानी से छिड़काव किया जा सकता है|

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपारिक हवाई वाहनों की अपेक्षा उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है ड्रोन खेतों के हालात जानने के लिए डाटा उत्तरण और उनका विश्लेषण करने ऐसे कार्यों में विभिन्न अवयवों व घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है| कृषि विश्वविद्यालय में ड्रोन के द्वारा किए गए छिड़काव को देखकर किसानों ने प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि यह तकनीक भविष्य में किसानों के लिए काफी लाभकारी होगी इस अवसर पर प्रेमपाल सिंह अखिल कुमार प्रमोद आदि लोग मौजूद रहे|

सीड कॉप्टर ड्रोन से बीजारोपण

कोरोना काल में मानव संक्रमण के खतरे को देखते हुए एआई i40 जैसी तकनीक काफी कारगर साबित हुई है ड्रोन ने बुजुर्गों एवं क्वारंटाइन किए गए लोगों तक दवाइयों की इमरजेंसी डिलीवरी कराने लोगों के मुंह मेंट पर निगरानी रखने में भी अहम भूमिका निभाई है ड्रोन तकनीक से एक सीमित समय में एक क्षेत्र में 50 गुना अधिक गति से सैनिटाइज किया जा सकता है इससे क्रॉप इंफेक्शन का खतरा नहीं रहता जिससे संक्रमण पर भी काबू पाया जा सकता है देश में कई प्रकार के ड्रोन विकसित हो चुके हैं जिससे पब्लिक मॉनिटरिंग वार्निंग ड्रोन आदि के लिए उपयोग किया जा रहा है आज ड्रोन के माध्यम से तेजी से बीजारोपण भी किया जा सकता है यदि बुवाई में ड्रोन का उपयोग तेजी से बड़ा तो निश्चित रूप से देश में एक ड्रोन क्रांति अवश्य कुछ ही वर्षों में दिखाई देगी कंपनियों के द्वारा कई ऐसे ड्रोन विकसित किए गए हैं जिससे 20 से 25 एकड़ खेत की बुवाई कम समय में आसानी से की जा सकती है इन ड्रोन में एक बार में 25 से 30 किलो बीज रखकर आसानी से बुवाई की जा सकती है पूर्णता स्वचालित यह ड्रोन 1 घंटे में 10 एकड़ खेत में बुवाई कर सकते हैं ड्रोन से दवा के छिड़काव के लिए किसानों को खुद खेत में नहीं जाना पड़ेगा इसे भारत में निर्मित सबसे बड़ा डॉन माना जा रहा है जिसे भारत के किसानों की जरूरतों को ध्यान में रखकर डिजाइन किया गया है|

खेती में ड्रोन की उपयोगिता

- कीटनाशक व खरपतवार नाशक रसायनों के छिड़काव में
- फसल में रोगों व कीटों के स्तर की जांच व उपचार मेंखेतों की भौगोलिक स्थिति का आकलन करने में
- तरल और ठोस उर्वरकों का छिड़काव करने में
- फसल अवशेषों के अपघटन के लिए जैविक रसायनों का छिड़काव करने में
- सिंचाई व हाइड्रोजेल का छिड़काव करने में
- खेतों एवं जंगलों में बीजों का छिड़काव करने में
- फसल को कीटों एवं टिड्डियों के आक्रमण से बचाने में
- मवेशियों व जंगली जानवरों से फसल को बचाने में
- मृदा के 3D मानचित्र के विश्लेषण में

युवाओं को कृषि में देगा रोजगार

ड्रोन रोजगार का एक ऐसा क्षेत्र है इसमें ड्रोन का परिचालन पायलटिंग सीख कर ऐसी युवा जिनकी आयु 18 वर्ष से अधिक है लगभग 20 से ₹30000 प्रति माह की कमाई आसानी से कर सकेंगे इसके लिए पायलट के पास प्रशिक्षण प्रमाण पत्र होना आवश्यक है देशभर में कई सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं ने ड्रोन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ कर दिए हैं युवाओं में ड्रोन के प्रति नया उत्साह देखने को मिल रहा है|

नगर विमानन महानिदेशालय के अनुसार ड्रोन को टेक ऑफ वेट के अनुसार पांच भागों में वर्गीकृत किया गया है

- नैनो 250 ग्राम से कम या बराबर(सूक्ष्म)
- 250 ग्राम से बड़ा और 2 किलोग्राम से कम या बराबर(मिनी)
- 2 किलोग्राम से बड़ा और 25 किलोग्राम से कम या बराबर(बड़ा)

150 किलोग्राम से बड़ा व्यवसायिक क्षेत्र में इन को उड़ाने के लिए भारत सरकार द्वारा बनाए गए मापदंडों व नियमों का पालन करना अनिवार्य है|

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपरिक हवाई वाहनों की अपेक्षा उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है ड्रोन खेतों के हालात जानने के लिए डाटा एकत्र और उनका विश्लेषण करने व ऐसे कार्यों में विभिन्न आवेदन वाह घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है ऐसी परिस्थितियां जहां परंपरागत मशीनों का उपयोग करना चुनौतीपूर्ण साबित हुआ है वहां पर ड्रोन काफी सफल साबित हो सकते हैं इनके उपयोग से खेती की उत्पादकता को आसानी से बढ़ाया जा सकता है उदाहरण के लिए गिरे धान का खेत गन्ना मक्का व कपास की फसल नारियल और चाय बागान बागवानी के क्षेत्र में आम के पेड़ों, लीची के पेड़ों आड़ू इत्यादि के पेड़ों में ड्रोन की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण व उपयोगी है क्योंकि इस टेक्नोलॉजी से इन बड़े-बड़े वृक्षों पर आसानी से समान रूप से दवाइयों का छिड़काव करके रोग नियंत्रण अथवा कीट नियंत्रण में सफलता हासिल की जा सकती है टेक्नोलॉजी के विकास के साथ-साथ ड्रोन के कलपुर्जे सस्ते और दक्ष पूर्ण होंगे इनसे लंबे अंतराल के लिए हवा में सस्ती उड़ान भरी जा सकेगी इनका उपयोग कृषि प्रबंधन में आर्थिक रूप से भी फायदेमंद साबित होगा कृषि कार्यों में उपयोग करके इसे कम आमदनी का जरिया मानकर युवा पीढ़ी का खेती से मोहभंग हो रहा था लेकिन अब नई टेक्नोलॉजी और डॉन जैसी टेक्नोलॉजी के आ जाने से लोगों का आकर्षण इस और बढ़ेगा और युवा अब गॉव में ही रह कर खेती की ओर आकर्षित होंगे और नई टेक्नोलॉजी का समावेश कर उच्च गुणवत्ता युक्त फलों एवं फल फूलों का उत्पादन कर सकेंगे यह एक अच्छी सुख सुविधाओं और ऊंची पगार की नौकरी के लिए भी शहरों की ओर विस्थापित हो रहे युवाओं को रोकने में काफी सफल साबित होगी ड्रोन नई तकनीकी से परिपूर्ण होने के कारण युवा पीढ़ी को अवश्य ही आकर्षित करेगा और खेती की तरफ कदम बढ़ाने के लिए युवाओं को प्रेरित करेगा इसकी भविष्य में अति आवश्यकता है इस तरह विभिन्न क्षमताओं से परिपूर्ण ड्रोन कृषि उत्पादन में प्रबंधन के लिए बहुत लाभप्रद साबित होगा। ड्रोन पर भारत के साथ-साथ कई अन्य देशों में गहन अनुसंधान लगातार जारी है इसको कृषि के विभिन्न कार्यों में दक्षता व सरलता से प्रयोग में लाया जा सकेगा वह दिन दूर नहीं है जब ड्रोन का रिमोट किसान के हाथ में होगा और मोबाइल की तरह इसे अपने जीवन में तेजी से अपना कर इससे भरपूर फायदे के लिए खेतों पर चलते हुए नजर आएंगे। सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय में ड्रोन टेक्नोलॉजी का प्रदर्शन और इसका लॉन्चिंग की गई इस दौरान देखा गया कि कृषि विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में आने वाले विभिन्न कृषि विज्ञान केंद्रों के किसानों ने इस टेक्नोलॉजी को बहुत पास से इसके प्रदर्शनों को देखा और इसको किसानों के लिए काफी उपयोगी बताया किसानों का मानना है कि यदि ड्रोन की कीमत कम हो जाती है या फिर सरकारी स्तर पर खरीद कर किसानों को न्यूनतम दर पर छिड़काव के लिए ड्रोन उपलब्ध होते हैं तो निश्चित रूप से कृषि के क्षेत्र में ड्रोन एक परिवर्तन लाने में सफल साबित होंगे हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आने वाले समय में किसान ड्रोन के रिमोट को अपने हाथ में लेकर अपनी खेती में एक क्रांति लाएगा जो कि सदाबहार क्रांति को लाने में एक नई दिशा प्रदान करेगा|

देश में ड्रोन हब बनाने के लिए बढ़ते कदम

हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पिछले दिनों मन की बात कार्यक्रम में युवाओं से भारत को ड्रोन तकनीकी से अग्रणीय देश बनाने का आवाहन किया था नई ड्रोन नीति 2021 के अनुसार वर्ष 2030 तक भारत को वैश्विक ड्रोनेहब के रुप में

विकसित करने की योजना भारत सरकार ने बनाई है स्कूलों कालेजों के विद्यार्थी भी इसमें खूब रुचि ले रहे हैं दोस्तों आज हम सभी लोग यह देख रहे हैं कि ड्रोन का सफल प्रयोग वैक्सीन दवाइयां खाना पहुंचाने से लेकर आपदा प्रबंधन सुरक्षा देश के बॉर्डरओं की निगरानी कृषि कार्यों में दवाई छिड़कने तथा कीट नियंत्रण के लिए इसके अलावा बीजारोपण आदि में किया जा रहा है|

यह कहना कतई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आने वाले समय में भारतीय कृषि परिदृश्य में ड्रोन टेक्नोलॉजी को बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करते हुए देखा जाएगा कृषकों की आय बढ़ाने में भी इसकी अहम भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि आने वाली सदी में यह टेक्नोलॉजी किसानों के गांव में बहुत तेजी से दस्तक देगी|

आर्गेनिक खेती व खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से झूम खेती की आवश्यकता

डॉ विभा ठाकुर, सहायक प्रोफेसर,हिंदी विभाग ,कालिंदी कॉलेज ,दिल्ली विश्वविद्यालय।
vibha.india1@gmail.com , Mobile no 9868545886

मानव ने दस हजार वर्ष पूर्व खेती करना आरंभ किया। उस युग में खेती करने के लिए सबसे पहले उगाए जाने वाले अनाजों में धान की खेती की गई क्योंकि इसकी खेती दूसरे अनाजों की तुलना में ज्यादा आसान थी । प्राचीन ग्रंथों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि सरस्वती घाटी से पूर्वोत्तर की दिशा में सांवा (श्यामक) और धान की खेती होती थी क्योंकि धान की खेती करने के लिए हल की जरूरत नही होती इसके पौधों की रोपाई पानी से भरे जमीन में सीधे की जा सकती है। शायद इसी कारण नृतत्वशास्त्रियों का मानना है कि स्वत: उग आने वाले जंगली वनस्पतियों से प्रेरित होकर खेती का आविष्कार महिलाओं ने किया होगा। प्रकृति की निकटता में रहने वाले आदिम जनजातियों में पुरूष और महिलाओं के कार्यों का विभाजन इस प्रकार किया गया था जिसमें पुरूष घर से दूर शिकार व वन्य सामग्री एकत्र करने का कार्य करता था और महिलाएं घर पर रहकर संतानों की देखभाल के साथ भोजन व्यवस्था के लिए अपने आसपास की भूमि पर बीज बौने व उसे सींचना आदि का काम करतीं थीं। इसी क्रम में स्त्रियों द्वारा झूम खेती का आविष्कार किया गया होगा । आरंभिक युग में खेती करने के लिए किसी नुकीली लकड़ी या खंतीनुमा औजार का प्रयोग किया जाता था। उस युग में जोताई का काम भी स्त्रियां ही करती थी ।इसका प्रमाण आदिम जनजातियों में उस मान्यता से प्राप्त होता है जब वर्षा करवाने के लिए इंद्र भगवान को प्रसन्न करने के लिए रात के समय स्त्रियां नग्न होकर हल खीचतीं थी और हलवाह भी स्त्रियां ही होती थी ।इस विधि को करने के समय किसी भी पुरूष को उस स्थान पर जाने की अनुमति नही होती थी । यानि कृषि के आरंभिक चरणों में हल खीचनें का काम पशु के स्थान पर मनुष्य करता था जिसमें महिलाएं भी अपना योगदान देती थी।

भारत में खेती की कई आदिम प्रणालियां रही हैं। आदिम कृषि प्रणाली को भारत में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। उडीशा, बिहार और आंध्र प्रदेश में आदिम कृषि को 'पोंडू' कहा जाता है, पूर्वोत्तर भारत में इसे 'झूम खेती' और छत्तीसगढ़ तथा बस्तर के क्षेत्र में यह खेती 'पेंदा' नाम से जानी जाती है। इसी तरह मध्य प्रदेश में बैगा अपनी आदिम खेती प्रणाली को 'बेंवर'कहते हैं। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन को देखते हुए वेबर खेती जिसे झूम खेती भी कहा जाता है कि उपयोगिता आज सिद्ध होने लगी है ।आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य के जीवन को सुखी व

समृद्ध किया है लेकिन पारंपरिक व अनुभवजन्य ज्ञान और विज्ञान आज भी महत्वहीन नहीं हुए हैं इसका उदाहरण है बैगा जनजाति द्वारा किए जा रहे पारंपरिक बैवर खेती जो आज पर्यावरणीय संकट को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं।

बैवर खेती पारंपरिक विज्ञान और लोक ज्ञान का अनुपम उदाहरण है। इस प्रणाली में कई प्रकार के बीजों का एक साथ उत्पादन किया जाता है। हर बीज अपने आप में बहुत सी भिन्नताएं और गुण लिए हुए होते हैं। जैसे एक बीज में अकाल सहने का गुण होगाए तो दूसरे में बाढ़ से मुकाबला करने का तीसरें में पाले से लड़ने की क्षमता होगी तो चौथा किसी अन्य प्राकृतिक संकट को झेलने की क्षमता रखता होगा। इसलिए बैगा एक साथ कई प्रकार के बीजों को रोपते हैं। ऐसा करने के पीछे उनके अपने अनुभवजन्य ज्ञान और खाद्य आवश्यकताएं होती थी । इस विधि की कृषि से एक साथ कई बीजों के रोपण द्वारा प्राकृतिक आपदाओं के समय भी बैगाओं को साल भर के लिए ज़रूरी खाद्यान्न की कमी नही पड़ती थी ।

बैवर खेती करने के लिए बैगा सबसे पहले खेती करने वाली जगह पर छोटी.छोटी झाड़ियों को काटकर बिछा देते हैं। झाड़ियों को अच्छी तरह से सूख जाने के लिए धूप में छोड़ दिया जाता है। जब वे सूख जाती हैंए तब उनमें आग लगा दी जाती है। एक.दो दिनों तक झाड़ियां जलती रहती हैं। अंगारे धीरे.धीरे राख बनते रहते हैं। राख ठंडी होती जाती है। और यही राख खाद की तरह उनके खेतो को उर्वर बनाते हैं। बरसात आने से एक सप्ताह पहले राख की परत के नीचे कई प्रकार के बीजों को बो दिया जाता है। वर्षा का पानी पड़ते ही बीज अंकुरित होने लगते हैं और कुछ समय बाद फसल के रूप में तैयार हो जाता हैं। बैगाओं की यह पद्धति ‘डाही घूंकना’ कहलाती है। इस प्रणाली में न तो रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता और न ही कीटनाशकों का। यह फसल पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर करती है जिसे आज की भाषा में आर्गेनिक खेती कहा जा सकता है ।इस पद्धति की खेती आदिवासी व जनजातिय समाज कई हजार वर्षों से करता आ रहा है ।इस प्रकार की खेती पहाड़ी क्षेत्रों में भी की जाती हैं - मेघालय, अरुणाचल प्रदेश जैसे पूर्वोतर राज्यों में झूम खेती करने की परंपरा अभी भी देखी जा सकती हैं ।झूम की खेती करने के लिए किसान अपनी फसल को काटने के बाद अपने खेत को कुछ सालों के लिए खाली छोड़ देता है।खाली जमीन पर पेड़ व पौधे उग जाते है । जिन्हें उखाड़ा नहीं जा सकता उन्हें सिर्फ जलाया जाता है और जब तक मिट्टी में उर्वरता बनी रहती है, तब तक इस भूमि पर खेती की जाती है। इसके बाद इस भूमि को छोड़ दिया जाता है, जिस पर पुनः पेड़-पौधे उग आते हैं।दूसरी जगह खेती के लिए वन भूमि को साफकर खेती के लिए प्रयोग किया

जाता है । लगातार एक ही स्थान पर खेती न करके थोड़े थोड़े समय के अंतराल खेती की जाती है। इस प्रकार झूम कृषि स्थानानंतरणशील कृषि है, जिसमें थोड़े-थोड़े समयांतराल पर खेत बदलते रहते हैं। लेकिन बढ़ती जनसंख्या व परती भूमि के सरकारी संरक्षण व पर्यावरण बदलाव के कारण देश के उत्तर पूर्वी भाग में झूम खेती करने वाले किसानों ने खेती के अपने स्थान को बदलने का अंतराल कम कर दिया है ।पहले खेती करने के बाद एक स्थान को 10-15 वर्षो तक छोड़ा जाता था लेकिन अब मजबूरी में 5 वर्ष बाद खेती के लिए पुनः उसी जमीन का इस्तेमाल करना पड़ता है। भूमिका की उर्वता कम होने में खाद की समस्या भी एक वजह है। वन संरक्षण अधिनियम के कारण जमीन व जलावन के लकड़ी की कमी के कारण अब किसानों को गाय या भैंस के गोबर से बने उपलो का उपयोग करना पड़ता है जबकि पहले यह गोबर किसानों की खेती के लिए खाद के रूप में इस्तेमाल किए जाते थे लेकिन अब इसमें कमी आ गई है । कुल मिलाकर भूमि, जल, वनस्पतियों और जानवरों से जीवन के रूप में प्राप्त संसाधनों का काफी तेजी से दोहन किया जा रहा है। पहले मानव समाज विवेक और सीमित जरूरतों के लिए ही प्रकृति संसाधनों का उपयोग करता था लेकिन अब औद्योगिकीकरण ए शहरीकरण व बढ़ती जनसंख्या के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का मात्रा से अधिक दोहन होने लगा है । जंगल पहले आदिवासियों के संरक्षण में थे । जंगल आदिवासी समाज की सम्पत्ति मानी जाती थी इसलिए इसके उपयोग के अपने नियम व कानून थे लेकिन औपनिवेशिक काल में वन व कृषि भूमियों पर सरकार का नियंत्रण होने लगा । वर्ष 1864 में स्थापित इम्पीरियल फ़ॉरेस्ट डिपार्टमेंट ने विभिन्न वनमंडलों द्वारा वनों को ब्रिटिश नियंत्रण के अधीन कर दिया गया।

इस अधिनियम द्वारा वनों को तीन श्रेणियों- आरक्षित वनों, संरक्षित वनों और ग्राम वनों में वर्गीकृत करके वनवासियों द्वारा वनोपज के संग्रहण को विनियमित करने का प्रयास किया ।इस अधिनियम के साथ वनों पर राज्य नियंत्रण स्थापित करके वन पर स्थानीय नागरिक के अधिकारों को प्रतिबंधित करके वनोपज संग्रहण को अपराध की श्रेणी में लाया गया और कारावास तथा जुर्माने द्वारा दंडित करने का प्रावधान किया गया। यानी अब वन राज्य की संपत्ति है । ब्रिटिश वन प्रबंधक यह मानते थे कि झूमखेती वनों को नुकसान पहुंचाती है क्योंकि वनों पर अधिकार करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा झूम की खेती को लेकर आम लोगों में ये दुष्प्रचार किया जा रहा था ताकि आदिवासी व जनजातिय लोग अपने पारंपरिक खेती को छोड़कर वन पर अपने आदिम अधिकारों को भी छोड़ दें । झूम खेती को रोकने का पहला गंभीर प्रयास 1860 के दशक में किया गया। इसके पीछे

इस प्रांत के चीफ कमिश्नर रिचर्ड टेंपल ने मुख्य भूमिका निभाई। इनका मानना था कि झूम खेती पुरानी सभ्यता से जुड़ी प्रथा है जिसमें सुधार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार बैगा लोगों को झूम खेती छोड़ कर हल द्वारा खेती करने के लिए प्रेरित करने का अभियान चलाया गया। इसके कारण कई स्थानों पर झूम खेती से उनकी फसलों को खेतों में ही बर्बाद कर दिया गया। जब बहुत से बैगा आदिवासी पड़ोस की रियासत में भाग गए तब सरकार ने कुल्हाड़ी खेती की आदत को धीरे.धीरे खत्म करने की नीति अपनाने की सलाह दी। क्योंकि बैगा लोग पेड़ों को काटने और वन उत्पादों को एकत्रित करने में पारंगत थे और वन विभाग इन लोगों के श्रम पर निर्भर था इसलिए वन विभाग ने 1890 में बैगा चक की स्थापना की। यह जंगल 23920 एकड़ में फैला हुआ था। सरकार ने झूम खेती करने वाले सभी लोगों को यहां बसाया और उन्हें झूम खेती करने की अनुमति दी। लेकिन अन्य स्थानों पर ब्रिटिश सरकार झूम खेती करने वाले किसानों को हतोत्साहित करने की नीति पर बल देने लगी। फिर भी बैगा लोगों ने हल द्वारा खेती के करने के बजाय झूम खेती को ही अपनाया। क्योंकि वह धरती को मां कहते है और मां के सीने पर हल नहीं चलाने की धार्मिक मान्यता ने बैगाओ को झूम खेती से जोड़े रखा। इस जनजाति के लोग हल के बिना ही जंगल में खेती लायक जमीन पर बीज का छिड़काव कर देते हैं और इससे उत्पन्न होने वाले फसल से वह जीवनयापन करते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार मां अपने पुत्र का किसी भी परिस्थिति में पेट भरती और संरक्षण करती है। उसी प्रकार धरती भी हमारे लिए अन्न उगाती है जिससे हम अपना पेट भरते हैं।

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार, विश्व में 250 मिलियन से अधिक आबादी अपनी जीवन निर्वाह के लिए स्थानांतरित कृषि पर निर्भर है। अत: धुमंतु व आदिवासी लोगों की खाद्य सुरक्षा की दिशा में झूम या स्थानांतरित कृषि के लिए परती भूमि के पुनरुद्धार को कानूनी मान्यता देकर उनके उपयोग के लिए स्थानीय निवासियों को प्रेरित किया जाना चाहिये और इससे होने वाले उपज को उन समूहों में बांट दिया जाना चाहिए जो स्थानांतरित कृषि करते हैं। स्थानांतरित कृषि एक प्रकार से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है भले ही इससे पर्याप्त नकदी या धन की प्राप्ति नहीं हो सकती लेकिन गरीबी रेखा के नीचे जी रहे उन किसानो को जो उर्वरक या कृषि उपकरणों को खरीदने में सक्षम नहीं हैंए वे किसान स्थानांतरित खेती द्वारा अपने परिवार की खाद्य जरूरतों को पूरा कर सकतें हैं । वास्तव में झूम खेती को आर्गेनिक खेती का विकल्प बनाया जा सकता है और

कीटनाशक व अन्य कृत्रिम खाद्य प्रयोग के कारण हो रहे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य संकट से निपटने के लिए स्थानांतरित खेती अपनाने के लिए स्थानीय लोगों को प्रेरित किया जा सकता है।

जैविक खेती

विनीत पांडे

भारतीय चिकित्सा एवं होम्योपैथी भेषजसंहिता आयोग,गाज़ियाबाद

मध्य प्रदेश जैविक खेती में भारत के अग्रणी राज्यों में से एक रहा है। एक लाख से अधिक जैविक किसानों के पंजीकृत होने के साथ, मध्य प्रदेश भारत के जैविक खेती के हिस्से का 40 प्रतिशत से अधिक हिस्सा है। सोयाबीन, चना, मसूर, तुअर और उड़द के उत्पादन में राज्य अन्य सभी से आगे है, रामतिल और मूंग में दूसरा स्थान है। कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) की वर्ष 2020-21 की रिपोर्ट के अनुसार राज्य से पांच लाख टन जैविक उत्पादों का निर्यात किया गया, जो ढाई हजार करोड़ रुपये से अधिक था। मंडला, डिंडोरी, बालाघाट, छिंदवाड़ा, बैतूल, कटनी, उमरिया, अनूपपुर, दमोह, सागर, अलीराजपुर, झाबुआ, खंडवा, सीहोर, श्योपुर, सतना, रीवा और भोपाल आदि जैविक खेती में लगे जिले हैं।

जैविक खेती को विश्व की आबादी के लिए तात्कालिक मांग के रूप में माना जाता है जो रासायनिक आधारित खाद्यान्नों, सब्जियों और फलों से बहुत पीड़ित है। केवल खपत से पहले फलों और सब्जियों को धोना हानिकारक रसायनों के अवशिष्ट प्रभाव को कम करने के लिए पर्याप्त नहीं है। आजकल हर क्षेत्र की तरह किसान रासायनिक खाद, ग्रोथ हार्मोन, कीटनाशक, हर्बीसाइड, फफूंदनाशक और कई अन्य हानिकारक रसायनों की भारी मात्रा का उपयोग करके अपने उत्पादन को बढ़ाने की दौड़ में भाग ले रहे हैं। इन सभी रसायनों के प्रयोग के बावजूद कीटों और बीमारियों की संख्या लगातार बढ़ रही है, इसलिए इन्हें ठीक करने के लिए रसायन की मात्रा भी है। यह न केवल उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है बल्कि हमारे दुधारू पशुओं, धरती माता और पर्यावरण के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। इन सभी समस्याओं को दूर करने के लिए, जैविक खेती को समाधानों में से एक माना जाता है। जैविक खेती की अवधारणा ठीक पारिस्थितिकी प्रणाली और प्राकृतिक के साथ नेटवर्किंग के सिद्धांतों का पालन करता है।

राज्य सरकार के अधिकारी के अनुसार, मध्य प्रदेश को न केवल जैविक कृषि को लागू करने वाला देश का पहला राज्य होने का गौरव प्राप्त है, बल्कि देश में सबसे प्रमाणित जैविक खेती क्षेत्र वाला राज्य भी है। रिपोर्ट के मुताबिक, राज्य में जैविक खेती का कुल क्षेत्रफल करीब 16,37,000 हेक्टेयर है, जो देश में सबसे ज्यादा है। जैविक उत्पाद का उत्पादन 14,02,000 मीट्रिक टन था, जो क्षेत्रफल के मामले में देश में सबसे अधिक है। जैविक खेती के लिए एक प्रोत्साहन के रूप में, राज्य में कुल 17,31,000 क्षेत्र हेक्टेयर जैविक प्रमाणित है, जिनमें से 16, 38,000 एपीडा और 93,000 हेक्टेयर क्षेत्र, पीजीएस से पंजीकृत हैं। इस तरह पंजीकृत जैविक क्षेत्र के मामले में भी मध्यप्रदेश देश में सबसे आगे चल रहा है। राज्य ने पिछले

वित्त वर्ष में 2,683 करोड़ रुपये के 5 लाख मीट्रिक टन से अधिक जैविक उत्पादों का निर्यात किया है। प्रदेश के जैविक उत्पादों का निर्यात तेजी से बढ़ रहा है।

प्रदेश में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2008 से अब तक राष्ट्रीय विकास योजना में 20 परियोजनाओं को भी मंजूरी दी गई है। मुख्य रूप से एनएडीईपी और बर्मी खाद गड्ढा निर्माण, जैविक उर्वरक और पोषक तत्व वितरण, जैविक खेती जागरूकता अभियान, नर्मदा नदी के किनारे सभी जिलों के सभी विकास खंडों में जैविक खेती कार्यक्रम, जैविक खेतों की स्थापना, हरी खाद के लिए सहायता, जैव उर्वरकों के लिए सहायता आदि मुख्य हैं

विदिशा, सागर और सीहोर जिलों के किसान जैविक गेहूं (शरबती किस्म) उगा रहे हैं। निमाड़ क्षेत्र के खरगोन और खंडवा जिलों में जैविक कपास की खेती के तहत क्षेत्र में भी वर्षों से विस्तार हुआ है। जैविक बासमती चावल की भी मांग है।

*****